मैं ने कहा.... !

शिष्ट सामाजिक हास्य एवं चुभते हुए साहित्यिक
और राजनैतिक व्यंग्य-विनोदो से परिपूर्ण
पन्द्रह मौलिक तथा सचित्र निबन्धों का संग्रह

लेखक
श्री गोपालप्रसाद व्यास

१९५१
आत्माराम एण्ड सन्स
पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता
कश्मीरी गेट
दिल्ली ६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स,
कश्मीरी गेट, दिल्ली

चित्रकार
श्री अनवर अहमद

मूल्य ३)

मुद्रक
गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली

अपने उन मित्रों को

जो तुलसीदासजी के शब्दों में

प्रथम वन्दना के अधिकारी है

मैंने कहा....!

मेरा जन्म वहाँ (परासौली-मथुरा मे) हुआ, जहाँ महाकवि महात्मा सूरदास ने हिन्दी का सर्वोत्कृष्ट काव्य 'सूरसागर' रचा; मेरी जन्म-तिथि (माघ शुक्ला दशमी) भी वह थी, जिस दिन छायावाद के प्रवर्तक महानाटककार प्रसादजी ने जन्म लिया और संवत् १९७२ को ईसवी सनों मे फैलाइए तो ज्ञात होगा कि इतिहास में उस महान् वर्ष का कितना महत्त्व है !

मेरी जीजी कहा करती थीं कि जब मैं गर्भ में ही था, तब एक महात्मा उनके द्वार पर आये थे और कह गये थे कि तेरा यह बालक बड़ा 'प्रतापी' होगा।

भगवान् श्री कृष्ण की तरह जब सात वर्ष का हुआ तो गोवर्द्धन पर्वत की तलहटी छोड़कर मथुरा आ बसा।

पढ़ाई के दर्जे तो छः ही पास किये, लेकिन तैरने, कुश्ती लड़ने, लाठी चलाने, चौपड़ खेलने और सबसे बाद मे कवित्त-सवैये पढ़ने में आस-पास काफी नाम कमा लिया। पिताजी की इच्छा के अनुसार कम-से-कम 'मैट्रिक' भी पास न कर सका तो क्या, कबड्डियों के बड़े-बडे पाले जीत लिये और रामलीला मे सीता, लक्ष्मण और राम के पार्ट कर-करके मथुरावासियों से वर्षों तक हाथ जुड़वाता रहा, शीश झुकवाता रहा और जय-जयकार करवाता रहा।

रोजी ८) महीने की कंपोजीटरी से प्रारम्भ की। मशीनों में स्याही भी दी और कागज भी लगाया। सत्यनारायण की कथा भी बाँची और व्याख्यान से लेकर सशुल्क प्रवचन भी किये।

आगरा मे जब पागलखाना चल निकला तो मैं भी वहाँ पहुँचा और वहाँ के मासिक 'साहित्य-सन्देश' से अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया।

'भारत छोड़ो' आन्दोलन के साथ-साथ मुझे आगरा छोड़ः पड़ा। तब कुछ महीने इटावा रहा। इटावा में जमकर गायत्री मंत्र ः जाप किया; महाभारत, बाल्मीकि रामायण और श्रीमद्‌भागवत ः पारायण किये। महाकवि देव की इस नगरी में ही कविता मुझ प प्रसन्न हुई। हास्यरस लिखना यहीं से प्रारम्भ हुआ।

ये हास्यरस की रचनाएँ ही 'दिल्ली चलो' आन्दोलन के जमा में दिल्ली ले आईं। इनकी ही बदौलत एक कंपोजीटर ('उप' ही सही) 'हिन्दुस्तान' का सम्पादक बना।

पद्य में जो हास्यरस की कविताएँ लिखीं वे 'अजी सुनो' के रूप में संगृहीत हैं। गद्य में जो व्यंग्य-विनोद लिखा, वह इस पुस्तक के रूप में आपके सामने है।

इस प्रकार, अगर कोई दुर्घटना नहीं हुई तो लक्षण मेरे सब बड़े 'प्रतापी' बनने के हैं, आगे मर्जी भगवान की!

बस, इसके सिवाय भूमिका में मुझे और कुछ नहीं कहना। व्यक्ति का परिचय मैंने दे दिया, कृति अपना स्वयं देगी।

'हिन्दुस्तान', नई दिल्ली
पहली अप्रेल, १९५१

गोपालप्रसाद व्यास

क्रम

झूठ बराबर तप नहीं !

"हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जब तक जान जाने का खतरा न हो, तब तक झूठ नहीं बोलना चाहिए। मैं कहता हूँ कि अगर नई दुनिया का शास्त्र मुझे बनाने को कहा जाय तो उसका पहला वाक्य यही होगा कि सच तभी बोलना चाहिए, जब कि जान जाती हो !"

झूठ बोले और पकड़े गये तो धिक्कार है ऐसे दांत घिसने पर ! अरे, झूठ बोलने का मजा तो यह है, होशियारी तो इसमें है कि आप झूठ बोलें और सच दिखाई दे। मैं कहता हूँ कि आप झूठ बोलिए और फिर बोलिए, लेकिन भाई मेरे, जरा, सफाई के साथ ! इसीको दुनियादारी कहते हैं, इसी में सफलता छिपी है !"

“बाहर की तो क्या चलाई, घर मे, यानी ‘उन’ से, मतलब अपने
के की जन्मदातृ से तो शायद भूलकर सपने मे भी मैं
ा, लेकिन. ....!”

आपका पता नहीं, मैंने तो अपना यह सिद्धान्त बना रखा है कि—

भूठ बराबर तप नही, साँच बराबर पाप।
जाके हिरदे भूठ है, ताके हिरदे आप ॥

और यकीन मानिए अपने इसी सुनहरे सिद्धान्त की बदौलत दिन-पर-दिन गोल हुआ जाता हूं, और नजर न लग जाये किसी की, बस. . सब तरह से पौ बारह है !

सच मानिए, भूठ बोलने का बड़ा महात्म्य है। अगर आप ईमानदारी से भूठ बोलना सीख जायँ तो विश्वास कीजिए कि फिर जिन्दगी मे आपको कभी मायूस रहने की जरूरत नहीं पड़ेगी। और शर्त लगाकर कह सकता हूँ कि चन्द दिनों की ही कसरत के बाद आपके पास ठाठदार बँगला, शानदार मोटर, चहकता हुआ रेडियो, भुकता हुआ अर्दली यदि खुद न आजाये तो कसम आपकी, मै आज से ही भूठ बोलना छोड़ सकता हूँ।

मै कहता हू, भूठ कौन नहीं बोलता ? हमारे पवित्र शास्त्रों मे लिखा हुआ है कि यह सारा संसार ही मिथ्या है। माता-पिता, स्त्री, पुत्र-कलत्र सब रिश्ते भूठे है। जग-व्यवहार सब मिथ्याचार है ! दो-चार सन्त फ़क़ीर और गांधी-महात्माओं को छोड़ दीजिए...... दुनिया मे इनका पैदा होना न होना हम भूठों की निगाह मे कोई अर्थ नही रखता। मेरा तो ऐलान है कि प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के अनुसार अगर हम सब भूठों को वोट देने का अधिकार प्राप्त हो जाय तो हिन्दुस्तान की एक भी सीट पर कांग्रेसियों का अधिकार नही रह सकता। सारी दुनिया मे हम भूठों का ही प्रचण्ड बहुमत है,

और इस तरह धरती के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक वह दिन भी दूर नहीं जब हर जगह हमारी मजबूत सरकारें कायम होने वाली हैं।

दर असल देखिए, दुनिया में और है ही क्या? खाने को तीन छटांक गेहूं, पहनने को तीन गज कपड़ा और बोलने को जी-भर झूठ। राशन और कण्ट्रोल के इस पिछले जमाने में अगर कहीं झूठ भी चोर बाजार में चली गई होती तो झूठ न मानिए, दुनिया से ६६ प्रतिशत आदमी उठ गये होते।

दुनिया का दस्तूर ही ऐसा है कि बिना झूठ के आपकी गाड़ी आगे बढ़ ही नही सकती। जिस तरह चटनी के बिना भोजन मे स्वाद नहीं आता, रूप के बिना यौवन किरकिरा होता है; इश्क के बिना शायरी फीकी लगती है; उसी तरह बिना झूठ के भी कोई जिन्दगी है? अपनी तो मैं कहता हूं कि जब तक गिनकर दिन मे १०१ बार झूठ नही बोल लेता ..रोटियाँ हजम नही होती!

हमारे शास्त्रों मे लिखा है कि जब तक जान का खतरा न हो, तब तक झूठ नही बोलना चाहिए। मै कहता हूँ कि अगर नई दुनिया का शास्त्र मुझे बनाने को कहा जाय तो उसका पहला वाक्य यही होगा कि सच तभी बोलना चाहिए, जब कि जान जाती हो।

यह बिलकुल झूठ बात है कि पहले जमाने मे झूठ बोलने वाले मर जाया करते थे। मै तो कहता हूँ कि कम-बढ़ ३५ साल का होगया हूं, तब से हजारों क्या लाखों बार झूठ बोलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, पर क्या मजाल, मरें तो मेरे दुश्मन, यहाँ तो सर मे दर्द तक नहीं हुआ! और सिर्फ आपसे कहता हूं कि बाहर की तो क्या चलाई, घर मे, यानी 'उन' से, मतलब अपने लड़के की जन्मदात्री से तो शायद भूलकर भी कभी सच नहीं बोलता, लेकिन इस पर भी दावा यह है कि आज तक किसी ने मुझे झूठा बनाने का हौसला नहीं किया।

झूठ बोले और पकड़े गये तो धिक्कार है ऐसे झूठ बोलने पर! झूठ बोलने का मजा तो यह है, होशियारी तो इसमें है कि आप झूठ बोलें और सच दिखलाई दे। मैं कहता हूँ कि आप झूठ बोलिए और

फिर बोलिए, लेकिन भाई मेरे, जरा सफाई के साथ ! इसीको दुनियादारी कहते है, इसीमे सफलता छिपी है।

झूठ बोलना भी एक कला है। एक महान् आर्ट ! इसकी महानता के आगे चित्रकारी के रंग फीके हैं, संगीत का स्वर बेसुरा है और कविता तो है ही निरर्थक !

लोग कहते है कि जिसने सत्य को पा लिया उसने परमेश्वर को पा लिया। मैं कहता हूँ जिसने झूठ को पा लिया उसे और कुछ पाना ही शेष नही रहा !

झूठ परम तत्व है ! यह अजरामर है ! सनातन है ! निर्विकल्प है ! सम्पूर्ण जगत् मे व्याप्त है। यद्यपि यह भेदाभेद से परे है, फिर भी अभ्यास और साधन के लिए मैंने इसके कुछ भेद किये है, जैसे—(१) शुद्ध झूठ और (२) अशुद्ध झूठ। (३) चार सौ बीस और (४) सफेद झूठ शुद्ध झूठ के अन्तर्गत आते है। अशुद्ध झूठ के अन्तर्गत (५) बे-सिर-पैर की, (६) मनगढ़न्त, और (७) गप्पों का बाहुल्य होता है। देश-काल, अवस्था और समय-संयोग के अनुसार इसके सैकड़ों प्रकार होते है, पर यहाँ स्थान-संकोच से उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर आज यह विषय घर-घर मे वर्तमान है और हिन्दुस्तान के ३३ करोड़ देवी-देवता इसके सम्बन्ध में नित्य नये अनुसंधान कर रहे है, इसलिए अभी से इस शास्त्र को लिपिबद्ध करना, इसकी बढ़ती को रोकना भी है।

आजकल बिना झूठ के यह शरीर रूपी गाड़ी जीवन रूपी दलदल को पार नही कर सकती। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि आप किसी दफ्तर मे बाबू है। बाबू भी ऐसे कि नेकनीयती के सबूत मे फाइलों पर झुकते-झुकते आपकी गर्दन खम खागई है। लेकिन अब आपको चार दिन की छुट्टी चाहिए। निहायत जरूरी काम आ पड़ा है। काम ऐसा नही कि जिसे टाला जा सके। आपकी पत्नी के भाई के लड़के को जुकाम हुआ है। हरदम छींकता रहता है। आपकी 'उन' के भाई-भावज सब परेशान है ! उनके मैके से आने वाले खत अक्सर छींकों से भरे रहते है। 'उन' का कहना है कि इस हालत मे अगर आप बच्चे को [illegible] जायगी।

आदमी को अपनी नाक का ख्याल नहीं रहा तो भला वह भी कोई आदमी है! लेकिन आदमियत के इस सच्चे मसले को आप अपनी अर्जी में लिखकर बड़े बाबू को भेज तो दीजिए? लिखना छोड़ सकता हूँ अगर आपकी अर्जी इस जन्म में तो क्या अगले सात जन्मों में भी मंजूर होकर आजाय!

ऐसी जगह पर आपको फन खेलना ही पड़ेगा। जैसा कि अक्सर मैं और मेरे साथी बाबू किया करते हैं, आप पड़ौसी डाक्टर के पास जायेंगे और दो रुपये का एक बिना दस्तखती नोट उसके हवाले करते हुए कहेंगे—"डियर डाक्टर, एक सार्टीफिकेट तो बना दो।" आपका डाक्टर भी इस फन में कम होशियार नहीं है। लिखेगा, "ऐसा मालूम होता है कि बाबू को ज़ोर से सर्दी का अटेक (हमला) हुआ है। दोनों फेफड़े भरे हैं। परहेज, इलाज और आराम की इन्हे सख्त जरूरत है।"

और यह लीजिए आपने मैदान मार लिया। दुअन्नी किसी लड़के को देकर अर्जी को दफ्तर रवाना कीजिए और आप ससुराल का टिकट कटाइए। अगर ससुराल का पानी लग जाय और "श्वसुर-गृह निवासं स्वर्ग-तुल्यं नृणानाम्" पर तबियत मचल जाय तो दो रुपया डाक्टर के नाम और सही! फिर लगाइए एक सप्ताह का गोता! कोई पनडुब्बी आपको नहीं खोज सकती और कोई सच्चा इस महान् सच को झूठ नहीं मान सकता।

सफेद झूठ का उदाहरण

पिछले जून के महीने मे जब मैं बच्चों के साथ घर से वापस दिल्ली लौट रहा था तो मुझसे भी ज्यादा किसी होशियार ने मेरी जेब से मनीबेग साफ कर दिया। टिकट, रुपये सब कुछ-उसीमे थे। नई दिल्ली स्टेशन पर उतरा तो होश फाख्ता! कुली सामान लेकर गेट की ओर चल रहा था, बीवी-बच्चे दिल्ली लौट आने से खुश थे! पर मेरी अँगुलियाँ जेबों को फाड़े डाल रही थीं और चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं कि हाय राम, अब क्या होगा?

दो तीन मिनट इसी गम में डूबा रहा कि टिकट का चार्ज तो दूर इस कुली को भी आखिर क्या दिया जायगा? लेकिन जिन्दगी-भर जिस झूठ को गले लगाया था आखिर उसने उबार ही तो लिया! मैं

आगे-आगे हो लिया। गेट पर आकर टिकट कलक्टर को सुनाते हुए श्रीमतीजी से बा-अदब कहा, "आइए, इधर से आइए! क्यों, भाईसाहब साथ में नहीं आये ? मुझे तार तो तुम्हारा मिल गया था, रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?"

श्रीमतीजी यह रंग-ढंग देखकर पहले जरा अचकचाई तो, लेकिन आखिरकार तो मुझ प्रमाणित झूठे की बीवी थीं। फौरन सँभलकर मुझसे भी सवा सेर होकर बोली, "उनके कोर्ट में जरूरी मुकदमा था, कहने लगे—तार तो दे ही दिया है स्टेशन पर जीजाजी आ ही जायेंगे, चली जाओ। पर गाड़ी में आजकल बड़ी भीड़ रहती है। सैकिण्ड क्लास में भी आदमी का भुरता बन जाता है !"

टिकिट कलक्टर बेचारा रौब में आ गया। उसने समझा किसी जज की बहन है और मुझ कांग्रेसी एम० एल० ए० को ब्याही है। टिकट मांगना तो दूर, अदब से एक तरफ हटकर खड़ा होगया ! जान बची और लाखों पाये।

मेरा ख़याल है कि अगर मैं सचाई से काम लेता तो मारा जाता। लेकिन यह झूठ बोलने का प्रताप था कि शान बच गई। इसीलिए तो कहता हूं कि झूठ बराबर तप नहीं !

मेरी पत्नी भली तो हैं लेकिन....!

"· वे लाखों से भली है, नेक है, खुशदिल है और उदार प्रकृति की भी हैं, लेकिन तभी तक, जब तक कि मैं उनकी समझ के दायरे के अन्दर बिना कान-पूँछ हिलाए चलता जाता हूँ। अगर कहीं उनकी खींची हुई लक्ष्मण-रेखा का अतिक्रमण करके अपने "पत्नीव्रत धर्म" से मै जरा भी डिगता हूँ तो समझ लीजिए कि मेरी भी पुश्तैनी रियासत पर सरदार पटेल की नजर पड़ गई है!"

"अब तो खरीदे हुए घोड़े की तरह, बिना कान-पूँछ हिलाये मुझे उनके पीछे-पीछे ही चलना है.. ... . क्योंकि डोरी मेरी उनके

किसी और की बात मैं नहीं जानता, लेकिन मैं तो सचमुच ही अपनी पत्नी का अत्यंत कृतज्ञ हूं। यों जन्म मुझे अपनी मां से मिला, पालन-पोषण और संस्कार भी उन्हीसे प्राप्त हुए पर इस बात को आज सबके सामने स्वीकार करने मे मुझे ज़रा भी झिझक नहीं होती कि जहां तक मेरे आदमी बनने का प्रश्न है, वह मुझे मेरी "बहूमाता" ने ही बनाया है!

'वे' न होतीं तो मैं आज कहीं का होता? आज उन्हींकी कृपा से मैं एक लम्बे-चौड़े कुटुम्ब का जीजा और फैले-पूरे घने बसे हुए एक मुहल्ले-भर को साला बनाने योग्य हुआ हूँ। इसमे तनिक भी सन्देह नहीं कि अगर मेरे पूज्य पिताजी ने मेरी शादी न करने का फैसला, बिना मुझसे पूछे ही कर लिया होता तो यकीन मानिए कि कवि, लेखक और पत्रकार बनना तो दूर, मैं तो स्वयं अपने बच्चों का पिता भी बनने से रह जाता। यह सब-कुछ उन्हींका प्रसाद है कि समाज में आज मेरे लिए भी पैर रखने को जगह है, सोसाइटी मे कभी-कभी मुझे भी सभ्य समझ लिया जाता है और सबसे बड़ी बात यह कि दिल्ली मे रहने को एक टीन भी किसी कदर किराये पर मिली हुई है।

क्या बात कहूं मैं उनकी? भगवान हजारी उम्र करे, 'वे' सचमुच इतनी भली हैं कि जब से हुजूर ने हमारे घर को रौनक-अफरोज फरमाया है हमें तो सिर्फ आराम है। करने को कुछ काम ही नहीं रह गया है। झाड़ा-बुहारा घर, धुले-धुलाए कपड़े, पका-पकाया खाना, बिछी-बिछाई खाट और बिना मांगे पानी जब आदमी को अनायास ही मिलने लगे तो उसे महाकवि घाघ के शब्दों में "उहां छांडि इहिवै वैकुण्ठा"

नजर आने लगता है। हमारी क्लीन-शेव सूरत, सजी संवारी देह और सलीके के कपड़ों को देखकर मित्र लोग हैरान होते हैं कि इस "बछिया के ताऊ" मे इतनी अक्ल कब से आगई ? मगर उन्हें यह नहीं मालूम कि यह तो किसी और ही का वरद हस्त है, जिसने हमारे ऊपर गिरने वाले गिरि गोवर्द्धन को यों अधर ही में थाम रखा है !

उनके श्री चरणों का सुस्पर्श पाकर, सच कहूं, इस घर की दुनिया ही बदल गई है। घर के बर्तन, कपड़े, फर्नीचर, चित्र, किताबें—यह समझिए कि घूरे-से लगने वाले इस घर का सारे-का-सारा वातावरण ऐसे दमक उठा है, मानो मुंह से बात करने लगा हो ! अब हमें न तो रूमाल की खातिर सारी अलमारी उलट देनी पड़ती है और न कविता के कागजों की तलाश में ताक से लेकर कूड़े के कनस्तर तक की दौड़ ही लगानी होती है। हर एक चीज कायदे से, अपने समय पर, इस सफाई और सुन्दरता के साथ स्वयं होती चलती है कि हम तो अपनी होम-गवर्नमेंट की इस शासन-कुशलता पर दंग रह जाते हैं। शादी से पहले जब हम इन्हें पसंद करने गये थे (हालांकि वह हमारी हद दर्जे की बेवकूफी थी) तब तो सपने मे भी यह ख्याल नहीं आता था कि इस सीधी-सादी, दुबली-छरहरी, गऊ सी लड़की मे इतनी 'एडमिनिस्ट्रेटिव पावर' और ये-ये गुन भरे होंगे !

परन्तु आप जानते हैं कि आदमी अपनी प्रकृति से बैल और कलाकार नाम का प्राणी वास्तव मे बिलकुल बछड़े के समान होता है। अगर दुर्भाग्य से वह कहीं हिन्दी का कलाकार भी हो तो फिर खैर नहीं ! समझो कि करेला है और वह भी नीम चढ़ा हुआ ! इस बिना सींग के पशु को यह समझिए कि बन्धन जरा भी नही सुहाते ! उसे घेर-घेरकर खूंटे की ओर लाइए, पर वह उछल-उछलकर उससे वैसे ही दूर भागता है जैसे "हनुमान-चालीसा" का नाम सुनते ही भूत भाग उठता है ! यही कुछ हाल मेरा भी समझ लीजिए। वह घेर-घेर कर लाती हैं और मैं बिदक-बिदककर भाग खड़ा होता हूँ !

उन्होंने मेरे आठ पहर चौसठ घड़ी का एक निश्चित "टाइम टेबुल" बनाकर रख छोड़ा है कि ६ बजे उठो और यह भी कोई बात है कि रोज नहाओ, इस वक्त अखबार पढ़ो और इस वक्त चाय पिओ। खाना

ठीक साढ़े नौ बजे, फिर १५ मिनट का 'रैस्ट' और तब सीधे चलो अपने काम पर ! और देखो, दफ्तर से अगर ठीक ५॥ बजे न लौटे तो खैर नहीं । भूख हो या न हो आते ही नाश्ता, फिर गपशप, रेडियो और ब्यालू। खबरदार, जो रात को ६ बजे बाद धरती पर पैर भी रखा तो ! नींद आये या न आये, घड़ी पर ६० डिगरी का ऐंगिल बनते ही आँखे बन्द कर लेनी पड़ती है !

अब भला आप ही बताइए कि विषवत रेखा की पूँछ से बंधे हुए इस गर्म देश में क्या कहीं रात को जल्दी सोया जा सकता है ? या सुबह तड़के जब भीनी-भीनी ठंडी बयार बह रही हो तो कहीं उठने को दिल करता है ? अपनी बात तो मैं कहूं कि सुबह सवेरे जब मैं तीन-तीन तकियों को जांघ, बगल और सिर के नीचे दबाये सोता हुआ जागता हूं या जागता हुआ सोता हूँ, तब मेरे पास, और की तो चलाई क्या, स्वयं नेहरू भी आये और मुझे खुद अपने हाथों से उत्तर प्रदेश का गवर्नर बनने का निमंत्रण भेंट करने लगे तो भी मैं उस समय खटिया छोड़ने पर किसी भी तरह राजी नहीं हो सकता । उस वक्त या तो मैं जवाब देना ही पसंद नहीं करूंगा, और अगर लाचारी से कुछ कहना ही पड़ा तो बिना आंखे खोले, यही कहूँगा कि जाइए जाइए नेहरूजी, आधी उम्र जेल में गुजारने वाले तुम इस शैया-सुख को क्या पहचानो ? अरे "सो सुख राज में न पाट में जो सुख आये खाट में !" लेकिन आप जानते हैं कि नेहरूजी को नाराज करना आजकल आसान है, पर अपनी लड़की के, भावी लड़के की, होने वाली नानी को नाराज करना हंसी-खेल नहीं । क्योंकि एक तो नेहरूजी आसानी से रूठने वाले नहीं और अगर रूठे भी तो अधिक-से-अधिक एक अन्तर्राष्ट्रीय (इन्टरनेशनल) स्पीच दे देंगे । मगर ये जो हमारी दिन में ६६ बार नैहर की ठसक दिखाने वाली नवेली हैं, यदि कहीं सवेरे-सवेरे रूठ गईं तो समझ लीजिए कि दिन-भर की खैर नहीं !

भगवान झूठ न बोलवाए, पहले हम बहुत सच्चे और नेक आदमी थे । लेकिन अब इनकी रोज-रोज की सख्ती और समय की पाबन्दी ने नाहक हमें गुनाह करना और झूठ बोलना सिखा दिया है। आप ही कहिए कि दफ्तर से रोज-रोज कहीं सीधे घर आया जाता है ?

कभी कहीं जाने को मन करता है, कभी नहीं ! कभी रास्ते में यह मि जाते है कभी वह । क्लब, गोष्ठी, समाज और रेस्ट्रां की तो बात ह छोड़िए ! कभी-कभी तो सीधे घर जाने के बजाय कबड्डी या गिल्ली-डंड खेलने को ही मन कर आता है। लेकिन एक हमारी 'ये' है कि हमें महीं में दो-चार दिन भी ऐसी छूट देने के लिए तैयार नही है । परिणाम य होता है कि हमें आखिर अपनी सदा सहायक झूठ का ही सहारा लेन पड़ता है । कभी कहते है कि दफ्तर में काम अधिक था, कभी कहते कि रास्ते मे साइकिल पचर होगई और कभी कहना पड़ता है कि जग्गो की जीजी, आज तो बस तुम्हारे ही पुण्य प्रताप से जीता बचा वरना वह 'एक्सीडेंट' हुआ होता कि इस वक्त तो हमारे कारनामे धर्म राज की अदालत मे खुल रहे होते !

ऐसी बात नहीं कि स्वयं उनमे इन बातों को सोचने समझने अक्ल न हो । घर-बाहर पास-पड़ौस का जो भी उनसे मिलता है, उनक सूक्ष्म बुद्धि की तारीफ करता नही अघाता और हमे भी उनके पीठ-पी यह मान लेने में कोई एतराज नहीं कि जहां तक तुलना का प्रश्न है, यह जो बुद्धि नाम की वस्तु है, दर असल उनके हिस्से मे, ईश्वर के पक्षपात से, हमसे अधिक ही आई है । लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं है कि हम निरे बुद्धू ही है ! पर क्या कहें, वे मुंह से तो कभी इस मनहूस शब्द का इस्तेमाल नहीं करतीं, लेकिन अपने आचरण और इरादों से मुझे अच्छी तरह इस बात का आभास करा देती है कि मै इससे कुछ अधिक या पृथक भी नहीं हूं ।

अब आप ही सोचिए कि मैं पढ़ा-लिखा अच्छा-खासा लम्बा-तन्दुरुस्त आदमी, कहीं बेवकूफ हो सकता हूँ ? लेकिन उनसे कोई इस बात को कह तो देखे ? वे मुझे कतई अक्लमन्द मानने को तैयार नही है। उनका पक्का विचार है कि मैं सचमुच ही ऐसा भोंदू हूं कि मालिने और कुंजड़िने मुझे आसानी से ठग सकती है, दर्जी मेरा कपड़ा मजे मे खा सकता है, हर दूकानदार मुझे आराम से लूट सकता है, सफर में मेरी जेब काटी जा सकती है और न जाने मेरा क्या-क्या नही हो सकता ? उनके विचार से, घर से बाहर, अकेले, मैं कहीं भी निरापद नहीं हूं । न जाने कब मुझे और कुछ नही किसीकी नजर ही लग जाय ? न जाने

कब मुझे कहीं कोई बहका ही दे और क्या पता न जाने कब मुझे बुखार ही होजाय तो ? और जी, आजकल किसीका कोई ठिकाना है—कोई कहीं मुझ पर जादू-टोना ही कर बैठे तो 'वे' तो बस बैठी ही रह जायंगी कि नही ? इसलिए वह सदा छाया की तरह मेरे साथ लगी रहती है। गोया मैं गृहस्थी की गाड़ी का ड्राइवर भले ही होऊं, मगर यह गाड़ी विना उनकी विसिल के हरगिज गतिमान नही हो सकती !

खुद मै अपने आपको कोई कम होशियार और किसीसे कम फितना नही समझता, लेकिन 'वे' मुझे सिर्फ भोला और भुलक्कड़ ही कह कर कृतार्थ करती है। कभी-कभी तो उनसे मजाक मे कह भी देता हूँ कि सुनो, तुम तो नाहक ही मुझसे शादी करके पछताई। इस पर जब 'वे' आंखे तरेरने लगती है तो मैं उनसे पूछता हूं कि अच्छा बताओ कि मुझमे और तुम्हारे बड़े लड़के मे, तुम्हारी समझ से, क्या मौलिक अन्तर है ? लेकिन मुश्किल यह है कि इन बुद्धिमानी के प्रश्नों से मेरी अक्लमन्दी उनकी निगाह मे कभी भी सही नही उतरती।

कभी-कभी जब कुछ सिरफिरे अखबारो मे नारियो की आजादी के आन्दोलन का समर्थन देखता हूँ तो मुझे बड़ा क्षोभ होता है। इन अक्ल के मारे सम्पादकों, पत्रकारो और लेखको से कोई पूछे कि आज नारी परतन्त्र है या नर ? कौन कहता है कि नारी परतंत्र है ? परतंत्र तो बेचारा आदमी है। दूर क्यो जाते है खुद मुझे ही देखिए न ? मुझ-जैसी सुशिक्षित, समझदार, भले घर की, सबका मान-सम्मान करने वाली सद्गृहस्थ पत्नी हर एक को मुश्किल से ही नसीब होगी। लेकिन मैं ही जानता हूं कि अपने घर मे, अपनी सहेलियों का सत्कार करने मे 'वे' कितनी स्वतंत्र है और अपने ही घर मे अपने मित्रों की आवभगत करने मे मै कितना परतंत्र हूँ ?

कहने का मतलब यह कि वे लाखों से भली है, नेक है, खुशदिल है और उदार प्रकृति की भी है, लेकिन तभी तक, जब तक कि मैं उनकी समझ के दायरे के अन्दर विना कान-पूँछ हिलाये चला जाता हूं। अगर कभी उनकी खींची हुई लक्ष्मण-रेखा का अतिक्रमण करके अपने पतिव्रत धर्म मे मैं जरा भी डिगता हूँ तो समझ लीजिए कि मेरी भी एक्की रियासत पर सरदार पटेल की नजर पड़ गई है ! मैं शौक से

बाजार जाऊं, ठाठ से सिनेमा देखूं, मजे से सैर करता रहूं, लेकिन मेरा पथ तभी तक सुरक्षित समझिए कि जब तक या तो 'वे' खुद साथ हों या उनकी आज्ञा की लालटेन मेरी राह के अन्धकार को नष्ट कर रही हो! क्योंकि बिना उनकी आज्ञा के बाजार जाना—आवारागर्दी, सिनेमा देखना—पाप, और सैर करना—महान मूर्खता है! इन अपराधों का दंड भी कोई साधारण नहीं मिलता। आंसुओं के महासागर में डुबकियां लगाने से लेकर तनहाई तक की सजा उनके पीनल कोड में दर्ज है! इतना ही नहीं जुर्म संगीन होने पर कभी-कभी तो तनहाई के साथ-साथ राशन-पानी भी बन्द कर दिया जाता है। अभी-अभी एक और एटम बम खोज निकाला गया है। अब तो बाजार-सिनेमा की ओर रुख करते ही हमारी पाकेट मार ली जाती है और वह शरणार्थी बनाकर छोड़ा जाता है कि हमारी जेब में ट्राम तक को पैसे नहीं होते।

उनकी भलाइयों और उनके साथ लगे हुए इस लेकिन के किस्से का कहां तक बयान करूं? हाल यह है कि घर में भोजन अच्छे-से-अच्छा बनता है, मगर वह होता है सब-कुछ उनकी रुचि का। कपड़े मुझे अच्छे-से-अच्छे पहनने को मिलते हैं, लेकिन मेरी पसन्द के बारे में मुझसे कभी एक शब्द भी नहीं पूछा जाता। मेरे घर में बढ़िया-से-बढ़िया क्राकरी है, एक-से-एक आला चित्र है, सब-कुछ है, लेकिन ईमान से कहता हूं कि रेडियो से लेकर आलू छीलने की मशीन तक में मेरी सलाह और समझदारी का रत्ती-भर भी साझा नहीं है।

सही बात तो यह है कि कभी विवाह के समय जब हम दोनों ने सप्तपदी के फेरे लगाये थे, उनमें मैं भले ही थोड़ी देर को आगे रहा होऊं, आज तो 'वे' मुझे आगे निकलने ही नहीं देतीं। अब तो खरीदे हुए घोड़े की तरह बिना कान-पूंछ हिलाये उनके पीछे-पीछे ही चलना है। राजी से चलूं या नाराजी से, चलना मुझे उनके पीछे ही है, क्योंकि डोरी मेरी उनके ही हाथ में है।

'उन' के साथ बाजार जाना....!

"एक दिन शाम को भोजन भी न मिले तो सह सकता हूँ; रात को पलंग पर बिस्तर न हो तो भी कोई बात नहीं; पर श्रीमतीजी के साथ बाजार जाना .. 'ना बाबा ! यह तो घर आई मुसीबत को मोल लेना है !!"

"अगर उनका वश चले और घर मे जगह हो तो वे सारे बाजार को अपनी सन्दूकों और आलमारियों में ही भर ले !"

३

मुझसे अगर आप कहें कि दफ्तर में ८ घण्टे के बजाय १० घण्टे की ड्यूटी देनी पड़ेगी, यकीन रखिए, मैं उसे खुशी-खुशी मंजूर कर लूँगा, पर अगर कोई कहे कि दो घण्टे क्या, सिर्फ १० मिनट के लिए श्रीमतीजी के साथ जाकर चाँदनी चौक में चहल-कदमी कर आऊं तो मेरे देवता कूंच कर जायेंगे! उनके साथ बाजार जाने की अपेक्षा अगर मुझे एक दिन शाम को भोजन भी नहीं मिले तो सह सकता हूं, रात को पलंग पर बिस्तर न हो तो भी कोई बात नहीं, पर श्रीमतीजी के साथ बाजार जाना · ···ना बाबा! यह तो घर आई मुसीबत को मोल लेना है।

अगर आप नई उम्र के अविवाहित हैं तो आपकी समझ में मेरी बात नहीं आ सकती और अगर बदकिस्मती से आप बहुत पुराने विधुर हैं तो भी बहुत हद तक बीसवीं शताब्दी के हम-जैसे सभ्य पतियों के साथ आप हमदर्दी प्रकट नहीं कर सकते। क्योंकि·······

जाके पैर न फटी बिवाई।
वह क्या जाने पीर पराई?

मामूली तौर पर देखने में यह बात बड़ी अटपटी-सी लगती है कि बाजार जाना और वह भी अपनी ही पत्नी के साथ··· ···इसमें भला मुसीबत की क्या बात है? सोचा तो हम यों करते हैं कि अच्छे-से-अच्छे सूट में हम होंगे, नये-से-नये कट में हमारी 'वे' होंगी, महीने-भर की हमारी कमाई से भरा हुआ उनका मनीबेग होगा—उनकी ललचाई हुई आँखें किसी साड़ी या ब्लाउज पर, अंगूठी या नेकलेस पर, पिन या पाउडर पर, लिपस्टिक या लवेंडर पर पीछे पड़ेंगी कि हम पहले ही उसे खरीदने का आर्डर दे चुके होंगे, और इस प्रकार उनकी उज्ज्वल

"अगर उनका वश चले और घर में जगह हो तो वे सारे बाजार को अपनी सन्दूकों और आलमारियों में ही भर लें !"

३

मुझसे अगर आप कहें कि दफ्तर में ८ घण्टे के बजाय १० घण्टे की ड्यूटी देनी पड़ेगी, यकीन रखिए, मैं उसे खुशी-खुशी मंजूर कर लूँगा, पर अगर कोई कहे कि दो घण्टे क्या, सिर्फ १० मिनट के लिए श्रीमतीजी के साथ जाकर चाँदनी चौक मे चहल-कदमी कर आऊं तो मेरे देवता कूंच कर जायेंगे ! उनके साथ बाजार जाने की अपेक्षा अगर मुझे एक दिन शाम को भोजन भी नहीं मिले तो सह सकता हूं, रात को पलंग पर बिस्तर न हो तो भी कोई बात नहीं, पर श्रीमतीजी के साथ बाजार जाना ··· ····ना बाबा ! यह तो घर आई मुसीबत को मोल लेना है ।

अगर आप नई उम्र के अविवाहित है तो आपकी समझ में मेरी बात नहीं आ सकती और अगर बदकिस्मती से आप बहुत पुराने विधुर है तो भी बहुत हद तक बीसवीं शताब्दी के हम-जैसे सभ्य पतियों के साथ आप हमदर्दी प्रकट नहीं कर सकते । क्योंकि········

जाके पैर न फटी बिवाई ।
वह क्या जाने पीर पराई ?

मामूली तौर पर देखने मे यह बात बड़ी अटपटी-सी लगती है कि बाजार जाना और वह भी अपनी ही पत्नी के साथ·······इसमे भला मुसीबत की क्या बात है ? सोचा तो हम यों करते है कि अच्छे-से-अच्छे सूट मे हम होंगे, नये-से-नये कट मे हमारी 'वे' होंगी, महीने-भर की हमारी कमाई से भरा हुआ उनका मनीबेग होगा—उनकी ललचाई हुई आँखे किसी साड़ी या ब्लाउज पर, अंगूठी या नेकलेस पर, पिन या पाउडर पर, लिपिस्टिक या लवेंडर पर पीछे पड़ेंगी कि हम पहले ही उसे खरीदने का आर्डर दे चुके होंगे, और इस प्रकार उनकी उज्ज्वल

दन्तपंक्ति और सलज्ज नेत्रों से जो स्नेह का सरल तरल स्रोत फूट उठेगा उसमें हम आकंठ डूब जायेंगे !

लेकिन यहां हाल यह है कि स्नेह का वह सरल स्रोत अब विशाल होकर इतना उमड़ पड़ा है कि उसका पानी हमारे कंठ तक ही नहीं नाक तक आगया है और यह चढ़ाव यदि इसी तरह बढ़ता ही गया और बाढ़ उतरने के कोई लक्षण नहीं हुए तो वह क्षण भी दूर नहीं समझना चाहिए कि जब पानी हमारी चोटी के ऊपर होकर निकल जायगा !

आप ही बताइए, यह भी कोई बात है कि बाजार उन्हें जाना है शनिवार की शाम को, लेकिन तकाजे शुरू होगये हैं सोमवार की सुबह से ही ! अरे भाई, शनिवार को बाजार जाना है तो उस दिन सुबह कह दो ! दफ्तर से जरा जल्दी उठ आयेंगे। और अगर हमारी पत्नी-भक्ति और फरमाबरदारी पर कुछ कम ही भरोसा है तो अधिक-से-अधिक शुक्रवार की शाम को ही याद दिला दीजिए। अब यह भी कोई बात हुई कि छः दिन पहले से दोनो वक्त हमारी यादाश्त की घड़ी मे चाबी लगाई जारही है कि देखो जी, शनिवार की शाम को बाजार चलना है !

और यहां तक हो तो भी कोई बात नही। हाल यह है कि उनके बाजार जाने की तैयारी मे न जाने हमे कितनी बार स्वयं बाजार को नापना पड़ता है। मसलन, वे पुरानी चप्पलों से इस बार बाजार नहीं जा सकतीं, तो यदि हम सचमुच लायक पति का सार्टीफिकेट प्राप्त करना चाहते है तो शुक्रवार की शाम को ही हमें एक नहीं कितनी ही चप्पलों के सेट, उनकी पसन्द के लिए लाकर हाजिर करने चाहिए। यह तो मैंने एक मामूली-सी मिसाल दी। तरह-तरह की पत्नियो के भांति-भांति के पतियों के इस सम्बन्ध मे अलग-अलग अनुभव है। मसलन, किसीके घर मे उनके बाजार जाने से पहले धोबी दगा दे जाता है। किसीके घर मे दर्जी दूकान बन्द करके रफूचक्कर हो जाता है, कहीं यकायक माथे की शीशी न जाने कहां गुम होजाती है और कहीं क्रीम का डिब्बा कम्बख्त ठीक उसी वक्त खतम होने की सूचना दे दिया करता है ! अब अगर आपको शनिवार की शाम और रविवार के पूरे दिन की खैर मनानी है तो पहले चुपचाप बिना

कान-पूंछ हिलाए इन अभावों की पूर्ति करनी होगी और फिर यह मनाना होगा कि हे भगवान, इन्हें कम-से-कम इतनी सुबुद्धि तो दो कि अब ये किसी अपनी सहेली के यहां तो मेरा मनिआर्डर न करदें कि "जरा जाना जी, मैंने शीला से भी बाजार साथ चलने को कहा है !"

हां, अगर आपके ज्यादा बाल-बच्चे नहीं है और मेरी तरह आपके भी एक मुन्ना और एक ही मुन्नी है तो कोई बात नही। जैसा अक्सर मै करता हूं वैसा ही आप करें कि उन्हें अकेले घर न छोड़ें। एक को कन्धे से लगालें और दूसरे को अंगुली पकड़ादें, लेकिन अगर भगवान की कृपा से और पूर्वजों के पुण्य-प्रताप से आपकी फुलवारी फूली हुई है और आपकी बालचर सेना मे हमारे पड़ौसी की तरह पूरी 'इलैविन' मे यदि केवल चार की ही कमी रह गई है तो सच मानिए मैं आपको कोई सलाह देने के लायक नहीं हूं ! तब तो भगवान ही आपका मालिक है ! बस यह समझ लीजिए कि आप किसी कस्बे की भरी सड़क के किनारे एक मुर्गियों के काफिले के समान है ! सड़क पर चलते हुए इक्के से, तांगे से, बैलगाड़ी से, मोटर से—किस-किस का क्या हाल होना है, यह कोई ज्योतिषी भी नहीं बता सकता !

मुसीबत एक हो तो कही जाय, और उसका इलाज भी किया जाय ! वे श्रीमतीजी, जिनसे घर मे अगर यह कहा जाय कि जरा उठकर पानी ही पिलादो, तो नौकर को आवाज देने लगती हैं या उसके अभाव मे ऐसे उठती है कि न जाने दिन-भर इन्हें किस चक्की मे जुतना पड़ा है ! वही, बाजार मे पहुंचते ही इतनी चुस्त और चंचल होजाती है कि औसत हिन्दुस्तानी पति उनका उस वक्त मुकाबला नहीं कर सकता ! एक दूकान से दूसरी दूकान पर इस झपाटे से पहुंच जायंगीं कि आपको इसका, जब तक कि वह वहां से खुद आवाज न दें, पता ही नहीं चलेगा। खैर, यह तो दूकानों की बात है कि भीड़-भाड़ में पता नहीं चलता कि कहॉ गई और क्या हुआ ? लेकिन मेरा तो दावा यह है कि सरे बाजार और खुली सड़क पर भी आप चलने मे उनका साथ नहीं दे सकते। गार्ड के डिब्बे की तरह आपका स्थान पीछे ही सुरक्षित है।

जरा आप उस दशा की कल्पना कीजिए कि जब आप मुन्ने को कन्धे से लगाये, मुन्नी का हाथ थामे, अपनी बगल में चीजों का पुलन्दा लिये श्रीमतीजी के पीछे-पीछे घिसट रहे हैं और आपके मिलने वाले है कि आपसे नमस्ते का फर्ज सिर्फ इसी समय अदा करना चाहते है! नमस्ते करके ही ये महाशय टल जायं तो भी गनीमत समझिए! लेकिन क्या बताएँ, उनमें से कुछ महाशय तो हमारे इस कदर हमदर्द होते है कि उनकी भलमनसाहत का खुले शब्दों में बयान ही नहीं किया जा सकता! वे कम्बख्त कुछ देर ठहर-ठहराकर हमारी हालत पर तरस खाना चाहते हैं और लाचारी यह कि पत्नी के सामने असभ्य व्यवहार के दोषी न बन जाने के कारण समझिए, या अपनी भलमनसाहत और स्थिति के तकाजे के लिए समझिए, हमें मित्रों पर कुपित होने के बजाय उनसे मुसकराकर ही बातें करनी पड़ती है।

एक तरफ तो यह मुसीबत है और दूसरी तरफ तस्वीर का एक दूसरा पहलू भी है। हम बड़े आदर्शवादी है, धड़ल्ले के समाज सुधारक है, स्वदेशी का व्रत भरी सभाओं में ले चुके है, लेकिन एक हमारी श्रीमतीजी है कि इन सब चीजों को वाहियात और वेतुकी समझती हैं। हम समझते हैं कि भारतीय औरतों की साड़ी जरा मोटी और हाथकते सूत की होनी चाहिए, लेकिन श्रीमतीजी को ठेठ विलायत की पारदर्शी वायल पसन्द है। हम सौंदर्य और श्रृंगार के लिए पाउडर, क्रीम और लिपिस्टिक को बिलकुल आवश्यक नहीं समझते, यही नहीं, हमारा ऐसा खयाल है कि इन चीजों के प्रयोग से स्वाभाविक सौंदर्य नष्ट होजाता है। लेकिन भाई मेरे, जरा आप इस तर्क को घर में प्रयोग करके तो देखिए? तीसरा महायुद्ध पहले ही शुरू न होजाय तो मेरा नाम नहीं! हम फालतू चीजों के एकत्रीकरण के सख्त खिलाफ है। लेकिन श्रीमतीजी का हाल यह है कि अगर उनका वश चले और घर में जगह हो, तो वे सारे बाजार को अपनी सन्दूकों और आलमारियों मे ही भरलें।

गरज यह है कि हमारी रुचियाँ अलग हैं और उनकी अलग! मुसीबत यह कि वे अपनी पसन्दगी हम पर जाहिर कर सकती है, लेकिन हम भरे बाजार में उनकी रुचि, चुनाव, योग्यता और पसन्दगी

को कोई चुनौती नहीं दे सकते। क्योंकि घर लुट जाय इसकी कोई चिन्ता नहीं, सिद्धान्तों का आँखों आगे खून होता रहे इसका भी कोई महत्व नहीं, महत्व सिर्फ इस बात का है, चिन्ता सिर्फ इतनी है कि कहीं कोई ऐसी बात न होजाय जिसे सभ्य-समाज में 'एटीकेट' के बाहर न बताया जाय। तो, उनके साथ बाजार जाने मे होता यह है कि हमे अपने धन को छोड़कर अपने तन और मन दोनों पर संयम रखना पड़ता है !

अभी कुछ दिन हुए कहीं एक लेख भी पढ़ा था। इसमे लिखा था कि पति की प्रकृति चन्दन के समान होनी चाहिए और पत्नी की प्रकृति दियासलाई की तरह ! पत्नी की प्रकृति से तो हमारा कोई वास्ता नहीं, अगर मुझे कोई लेख लिखना पड़े तो मैं दियासलाई छोड़ उन्हें बारूदी सुरंग की उपमा देना अधिक पसन्द करूँगा ! लेकिन जहां तक पति की प्रकृति का सवाल है हमें चन्दन की उपमा की कद्र करनी चाहिए।

लेकिन बातों से और चन्दन बनकर रहने से ही काम चल जाय तो कोई मुसीबत खड़ी न हो। यहां तो मुसीबत यह है कि आमदनी अपनी सीमित है और इच्छाएं उनकी असीमित ! जैसा मैंने पहले कहा अगर उनका वश चले तो वे सारे बाजार को अपने घर में भर लें। पास-पड़ौस मे जितनी औरतों पर जितने नये डिजायन की साड़ियां देखती है, वे उन सबको खरीद लेना चाहती हैं। इस पर चतुर दूकानदार भी पतियों की हालत पर कोई खास रहम करने वाले नहीं होते। उन्हे एक मामूली-सी छींट का टुकडा दिखाने के लिए कहिए, वे रंगबिरंगे थानो के अम्बार लगा देंगे और इतनी तरह-तरह की दिल पसन्द चीजें पेश करेंगे कि आपकी 'उन'के मन मे विभ्रम पैदा होजायगा कि वे क्या तो लें और क्या छोड़ें ? गरज यह है कि बिना गांठ कटे आपकी गति नहीं ! लेकिन प्रश्न यह है कि आखिर आपकी गांठ कहां तक कटेगी ? कोई कुबेर का खजाना तो आपके यहां गढ़ा नहीं ? अक्सर होता यह है कि 'पर्स' बेचारा लाचार होकर मुँह फाड़ देता है और उनकी तमन्नाएं अधूरी रह जाती है ! आखिरी वक्त कभी-कभी तो यह हाल होता है कि लौटने के लिए तांगे के पैसे तो दूर-

किनार मुन्ने के गुब्बारे के लिए भी एक आना जेब में नहीं रहता। तब यह जरूरी है कि आप पैदल वापस लौटें। यह भी जरूरी है कि आप मुन्ना, मुन्नी और सामान के भार से थक जायं और आपको सहायता के लिए श्रीमतीजी से अपील करनी पड़े, और उस अपील के प्रत्युत्तर में जो सार्टीफिकेट आपको इनायत फरमाया जाय, उससे आपकी आत्मा हरी होजाय और आगे से आप कभी उनके साथ बाजार न जाने का संकल्प कर बैठें। लेकिन आपका संकल्प कितना टिकाऊ है और आपकी मुसीबतों का सिलसिला कितना छोटा है—यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ !

मकान नहीं मिला....!

"शायद भारतीय पुलिस के सी० आई० डी० वाले भी अपने फर्जी मुजरिम का पता इस होशियारी और मुस्तैदी से नहीं लगाते होंगे कि जिस लगन और सफाई से हम खाली मकान के मालिक का ही नहीं—उसके भाई-भतीजों, साले-सुसरों तक की खोज-खबर ले आते है और तरह-तरह से अपनी बातों और सिफारिशों का जाल उस पर बिछा देते हैं, लेकिन साहब, क्या बताएं ऐसे-ऐसे भीम-प्रयत्नों के बाद भी हमारा मोर्चा अभी तक कहीं नहीं जम पाया है और हमारी गोली हर बार खाली ही गई है!"

घूंघट सरकाकर मकान मालकिन बोलीं, "जी, आपकी शादी होगई है

४

दिल्ली मे मकान खोजते-खोजते आज तीन साल होगये, मगर मकान क्या हुआ, एक मुसीवत होगई है। नई दिल्ली और कनाट प्लेस के ऊँचे-ऊँचे महलों से लेकर शहर की सीमा मे स्थित जितनी भी गन्दी और उजली गलियाँ है, उन सब की चरण-रज हम शीश पर चढ़ा चुके हैं, लेकिन तकदीर कुछ ऐसी खोटी है कि सब जगह से एक ही टका-सा उत्तर मिलता है कि साहब, अभी तो कहीं कोई खाली नहीं है !

कभी-कभी हम सोचते हैं कि इतनी लगन यदि कहीं हमने पिछले दो-एक स्वदेशी आन्दोलनों मे दिखा दी होती तो आज कैसा मकान, कहीं के एम० एल० ए० होगये होते और तव हम तो क्या हमारे रिश्तेदारों तक को वह कोठियाँ 'एलाट' हुई होतीं कि लोग भौचक्के रह जाते ! या फिर गोसाईं तुलसीदासजी की तरह हमे भी अपनी पत्नी का व्यंग-वाण लग गया होता (हालांकि उनकी तरफ से इस काम मे कभी कोई जान-बूझकर चूक नहीं हुई है) और हमने भी जग-समारी छोड़कर "हरि से हेत" किया होता तो विश्वास मानिए कि योगियों के भी ध्यान में न आने वाला वह परमात्मा भी हमारे ऐसे अखण्ड तप से पिघल गया होता और मकान की तो क्या चलाई, हम तीन-तिरलोकी का राज्य भी पागये होते और फिर हमे घर-गिरस्ती वसाने के लिए यों किसी दड़वे की जरूरत ही नहीं पड़ती !

आपसे क्या छिपाएं, जितने भी हमारे रिश्तेदार हैं या आसानी से जिन्हे रिश्तेदार वनाया जा सकता है, सच मानिए, उन सवके घर दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह दिन ठहरकर हमने अपनी नई और पुरानी

सब रिश्तेदारियाँ खत्म कर डाली हैं और अब तो हाल यह है कि भूले-भटके अगर किसी दिन हम कहीं उनसे मिलने भी जा निकलते हैं तो उनकी पत्नियाँ पति को डांटकर अन्दर से ही कहलवा देती हैं कि 'वे' तो बाहर गये है !

अब तो शहर की धर्मशालाओं के मुन्शी, मेहतर और चौकीदारों पर ही हमारी दिल्ली बसी हुई है ! जिस दिन इनकी आँखें फिर गई-बस, उसी दिन हमारे लिए संसार सूना होजायगा ! इन लोगों से जैसे हमारे ताल्लुक है, वैसे आपको सगे भाइयों में भी नहीं मिलेंगे! और हों भी क्यों नहीं ? जब एक-एक धर्मशाला में तीन-तीन दिन नियम से और दस दस दिन धांधली से हम डेरा डाल चुके हैं तो ये मुन्शी, मेहतर और चौकीदार भला, हमें नहीं पहचानेंगे तो और किसे पहचानेंगे ?

कितनी ही बार तो ऐसा हुआ कि दिन-भर दफ्तर में काम करके हम रात को गुरुद्वारे में जा सोये हैं और सुबह 'सत् श्री अकाल' कहकर वहाँ से 'कड़ाह प्रसाद' प्राप्त करके खिसक आये है !

हां, अभी फुटपाथ पर सोने की नौबत नहीं आई ! पर हमारी तकदीर का अगर यही हाल रहा और भगवान की ऐसी ही कृपा बनी रही कि दिल्ली में यों ही आम भरती होती चली गई तो वह दिन भी दूर नहीं समझना चाहिए कि जब हम बिस्तर बगल में दबाये हुए किसी फुटपाथ की तलाश मे, अन्धेरे मे निकल पड़ेगे !

यह नहीं कि हमने मकान की तलाश मे कहीं कसर छोड़ दी हो, या अपनी-सी करके न रहे हों। सच तो यह है कि कोई आई० सी० एस० या पी० सी० एस० के इम्तिहानों मे भी क्या तैयारी करके बैठता होगा कि जिस सूझ-बूझ और तत्परता से हम मकान की खोज में निकलते है !

दोस्तों की बात तो छोड़ दीजिए, मिलने-जुलने वालों और जिनसे थोड़ी-सी भी राम-राम या दुआ-सलाम बाकी है, उन तक से भी हम दिन मे तीन बार पूछ लेते है कि कहिए, "हमारी किस्मत का क्या हाल है ?" और जैसे ही हमें अपनी तकदीर कुछ कुसमुसाती नजर आती है, यानी पता चलता है कि कहीं कोई मकान खाली हुआ है,

या होने वाला है हम उसके आस-पास वैसे ही मँडरा उठते है जैसे कि चुनावों के दिनों में हमारे भाई-बन्द आँख के अन्धे और गांठ के पूरे उम्मीदवारों के पास आ मॅडराते है !

शायद भारतीय पुलिस के सी० आई० डी० वाले भी अपने फर्जी मुजरिम का पता इस होशियारी और मुस्तैदी से नहीं लगाते होंगे कि जिस लगन और सफाई से हम खाली मकान के मालिक का ही नही, उसके भाई, भतीजे, साले, सुसरों तक की खोज खबर ले आते है और तरह-तरह से अपनी बातों और सिफारिशों का जाल उस पर बिछा देते है। लेकिन साहब, क्या बताये ? ऐसे-ऐसे भीम-प्रयत्नों के बाद भी हमारा मोर्चा अभी तक कहीं नहीं जम पाया है और हमारी गोली हर बार खाली ही गई है !

उस समय की हमारी हालत का आप अन्दाजा तक नहीं लगा सकते कि जब मकान-रूपी लका की खोज मे हम न जाने किन-किन सुरसाओ के मुँह से निकलकर त्रिकूट पर्वत पर पहुँचे है और इससे पहले कि हम मशक समान रूप धारण करे, हमे पता चला है कि सोने की लंका तो पहले ही लुट गई—अर्थात् मकान हमारे पहुँचते-पहुंचते घिर गया है और हमे बड़े अफसोस के साथ कहा गया है, "जी, आप कल नहीं आये, नहीं तो वह आपका ही था। हमने उसे अपने लड़के के, साले के, भाई के, भतीजे को अभी-अभी उठा दिया है।"

तो, मैंने कहा, दिल्ली मे सब कुछ है, पर मकान नहीं ! यहाँ चार प्रहर लक्ष्मी बरसती है पर गृहलक्ष्मी को टिकाने के लिए चार हाथ जगह नहीं ! आप अगर कंगाल है तो दिल्ली आजाइए, चोर-बाजार से मालामाल हो जायँगे। यदि पैसा बहुत है और उसके खर्च करने की कोई सूरत नजर नहीं आरही है तो बारहखम्बे के बाजार में सिर्फ एक चक्कर काट लीजिए, सूरते-ही-सूरते नजर आने लगेंगी। और इन दोनों मे से अगर आप किसीके लायक नहीं तो नौकरी यहाँ दिन मे तीन की जा सकती है और छै छोड़ी जा सकती है। सच कहता हूँ कि अंग्रेजों के जमाने मे रायबहादुरी का भी मिलना इतना

कठिन नहीं था, जितना इस समय एक छोटे-से मकान का मिलना कठिन होगया है !

अभी ताजी परसों की बात है कि हम उस नई बस्ती में एक खाली मकान का सुराग पाकर पहुँचे। किवाड़ों पर बार-बार दस्तक देने और चीखने-चिल्लाने पर मकान मालिक मुश्किल से खीजते हुए निकले और बिगड़ते हुए-से बोले, "क्यों क्या काम है ?"

'जी," मैंने कहा, "कोई मकान खाली सुना है ?"

मकान मालिक चिड़चिड़ा कर बोले, "सुबह से शाम तक मकान-मकान, यहाँ कोई खाली नहीं है !"

लेकिन जैसे चिकने घड़े पर पानी की बूँदें नहीं ठहरतीं, वैसे ही इन उत्तरों को सुनते-सुनते हम भी एक ही पक्के होगये है ! हमने और भी विनम्र होकर कहा, "जी, ठीक है, नहीं होगा। पर वह जो अपने लाला छदामीमल है न ? उन्होंने भेजा है और कहा है कि लाला बदामीमल से मेरा नाम लेना। लालाजी, बड़ी मेहरबानी होगी !"

लालाजी ने बड़े ध्यान से हमें ऊपर से नीचे तक देखा, मानो शहर कोतवाली मे दीवान साहब किसी नामी गुण्डे की शिनाख्त कर रहे हों ! फिर थोड़ी देर सोचकर बोले, "आप अन्दर आइए !"

सतयुग में जब गज को ग्राह ने ग्रसा था और उसने सूँड ऊँची करके हरि भगवान् से टेर लगाई थी कि हे अशरण शरण भक्तवत्सल प्रभो, तुम्हीं हो दीनानाथ—अब तेरे सिवा कौन मेरा कृष्ण कन्हैया ! ठीक इसी तरह ही मैंने 'संकट मोचन नाम तिहारो' का पाठ करते हुए कहा कि हे पवनपुत्र, 'अब तुही बचा लाज मेरी' और बैठ इस लाला के घट मे और काम सिद्ध कर !

अन्दर ले जाकर लाला ने अपनी ललाइन के सामने खड़ा कर दिया और बोले, "यह मकान चाहते हैं, बात करलो इनसे।"

खजूर से गिरा तो बबूर मे अटका ! लालाजी से तो हनुमानजी विजय दिला भी सकते थे पर ललाइन के सामने तो हमें उनकी भी नानी कूँच करती हुई दिखाई दी !

घूँघट सरकाकर मकान मालकिन बोली, "जी, आपकी शादी होगई है ?"

प्रश्न सुनकर मैं सन्नाटे में आगया कि आखिर ललाइन का मतलब क्या है ? बहुत देर बाद जब अक्ल ठिकाने आई तो मालूम हुआ कि इन ललाइन ने तो पहले ही वार मे हमारी धरती खिसका दी होती, पर वह तो यों कहिए कि हमारे पिताजी बड़े बुद्धिमान थे, उन्होंने आज के खतरे को १६ साल पहले ही अनुभव करके हमारी चाई-माई बचपन मे ही कर दी थी !

हमने सीना तानकर कहा, "जी, भगवान की कृपा से दो बच्चे भी है।"

फिर पूछा, "आपकी बहू लड़ाका तो नहीं है ?"

हमने मन मे सोचा कि लड़ाका तो वह ऐसी है कि उसके मारे अच्छा-खासा घर छोड़कर दिल्ली देखनी पड़ी है, पर प्रकट मे ललाइन से कहा,..."जी, बिल्कुल गऊ है गऊ ! भले घर की लड़की है, सीधे मुँह उठाकर बात भी नही करना आता।"

लेकिन यहीं तक गनीमत नहीं थी। सेठानी ने लगातार प्रश्नों की बौछार जारी रखी—बच्चे ऊधमी तो नही है ? आप प्याज तो नहीं खाते ? पंजाबी तो नहीं है ? कहाँ काम करते है ? कितनी आमदनी हो जाती है ? अब तक कितने मकान बदले हैं ? मेहमान तो आपके यहाँ नहीं आते, आदि-आदि।

फिर कहा, "जी, बहू-बेटियों का घर है। हम तो भले आदमी को ही अपने यहाँ बसाते है और देखो बाबूजी, यह बात पहले से सुन लो छते सब झाड़नी पड़ेगी, टट्टी रोज धुलानी होगी, जीना, आंगन सब आपके जिम्मे है। और देखिए, मकान की मरम्मत हम नहीं करायेगे कि पीछे आप यह कहे कि यह लगवादो, वह लगवादो—यह टूट गया, वह फूट गया !"

आप जानते है कि गरज बावली होती है। जैसा कि तय था इन सब बातों का उत्तर 'हां' मे ही दिया गया। हम समझते थे कि बस, मैदान मार लिया ! लेकिन हमे यह क्या पता था कि अभी हल्दी-घाटी का संग्राम बाकी है ! अब तक जो लालाजी गुम बने बैठे थे, अब उनकी चोंच खुली और वह कहने लगे, "देखिए, बाबू साहब, हम किसी बाहर के आदमी को मकान नहीं देते, पर क्योंकि आप लाला छदामी-

मल के भेजे हुए हैं तो ऐसी बात है कि आपको इन्कार भी नहीं किया जा सकता !"

हमने समझा कि शायद हमारी बृहस्पति जोर मार रही है !

लेकिन कुछ ही क्षण बाद लाला बदामीमल ने फिर कहा, "देखिए जी, हम लड़ाई-झगड़े वाले आदमी नहीं हैं। जो बात तय होजाती है उस पर बाद मे झगड़ा-टंटा नहीं करते।"

हमने श्रद्धालु भक्त की भांति गर्दन झुकाली और उनके प्रवचन को आकंठ पान करते गये !

और फिर उन्होंने पलकों को दो-तीन बार झपकाकर ओठों को पहले सिकोड़ा और फिर पीछे फैलाकर अपने चारों ओर देखते हुए धीरे से कहा, "हम कोई लिखा-पढ़ी नहीं करेंगे। किराये की रसीद भी आपको नही देंगे। मकान जब चाहेंगे तब खाली करा लेंगे।"

भला मैं चाहकर भी इस पर कोई आपत्ति कैसे कर सकता था ?

लालाजी कहते गये, "ऊपर दो कमरे है, किराया भी मामूली है, यही—६०-६० रुपये। वाटर टैक्स अलग, बिजली टैक्स अलग, भंगी का महीना अलग, फिनाइल के दाम अलग। आपको छदामीमल ने भेजा है नहीं तो एक-एक कमरे के १००-१०० रुपये लग चुके है। लेकिन आप जैसे भले आदमियों से अधिक लेना शोभा नही देता ! मकान आप जानते हैं लड़ाई मे बनवाया है। २५०००) टूट गये है, साहब ! कोई और काम तो अपने यहाँ होता नहीं, बस ५००) ही और दे दीजिए।

जैसे जापानी गुब्बारे की डोरी खोल देने पर फूंक सरक जाती है, वैसे ही लालाजी की महाप्राण बातों को सुनते-सुनते हमारी छाती बैठ गई थी ! फिर भी हमने जोर लगाकर पूछा, "जी, यह ५००) क्या किराये के पेशगी है ?"

बोले, "जी, आपसे क्या पेशगी लेंगे ? भले आदमी कभी किसी का छदाम भी नहीं रखते। आजकल ५००) होते ही कितने है ? इस लड़ाई मे तो रुपये की कदर अधेले की रह गई है !"

मैंने डरते-डरते पूछा, "तो आपका मतलब पगड़ी से है ?"

तो बोले, "आप इसे पगड़ी कहते है—राम-राम !" अजी यह तो नये मकान की मुँह-दिखाई है बाबू जी ! वह भी आपकी खातिर,

नहीं तो इतने कम किराये का और ऐसा आलीशान मकान दिल्ली में आपको दूसरा नहीं मिल सकता !

उस आलीशान मकान की बाबत कुछ न कहना ही अच्छा होगा। कच्चा फर्श, टूटी छत ! कमरे ऐसे आलीशान कि जिनमे कोई ताक नहीं, आलमारी नहीं, जंगला नही। लम्बे-चौड़े इतने कि दो खाटें मुश्किल से बिछ सकें। मोरी नहीं, परनाला नही, रसोई नहीं, पंडहरी नहीं !

दबी बिल्ली जैसे चूहो से कान कटाती है, वैसे ही हम वहां से उठकर चले आये है और अपनी सारी झूंझल कलम के सहारे बेकार कागजों पर उतार रहे है। आप इसे पढ़कर हँसेगे और कुछ को शायद हमारे हाल पर हमदर्दी भी हो, लेकिन धर्मशाला मे लौटकर अपनी श्रीमतीजी को हम क्या उत्तर देंगे, यह अभी तक समझ मे नहीं आया है।

मेहमान से भगवान बचाए....!

"अक्सर मेहमान के घर में दाखिल होते ही हमारी 'वे' बीमार हो जाया करती हैं और उनके स्वभाव में रूखापन भी अधिक आजाता है। औसतन उन दिनो हमारे घर में बच्चे ज्यादा पिटा करते है, वर्तन अधिक टूटा करते हं और दाल-शाक में मिर्चें अपनी उपस्थिति जोर-शोर से सूचित किया करती हैं। अक्सर मेहरी को इन दिनो जवाब दे दिया जाता है और हमारी श्रीमतीजी जो आये-दिन घर की देहली के बाहर पैर तक नही निकालतीं, इन दिनो तीन-तीन चार-चार घंटे सहेलियो के यहां जाकर ताश खेलने में अपने वेकार समय का सदुपयोग किया करती है!"

"आपको तो पता चलेगा पीछे। इससे पहले ही आपकी बैठक पर दल-बल उनका कब्जा हो चुका होगा !"

५

आजकल तो हाल कुछ ऐसा होगया है कि क्या घर और क्या बाहर कहीं कोई बात बनाये ही नहीं बनती। एक हमारे महामहिमामय पूर्वज थे कि उनके घर यदि कभी कोई अतिथि आजाता तो समझते थे कि जैसे स्वयं भगवान ने ही उन पर कृपा की है। परिवार-भर में आनन्द का सागर हिलोरें लेने लगता, दूर से ही अर्घ्य देते और पलक पांवड़े बिछाते अतिथि महोदय का सुस्वागत किया जाता, भांति-भांति के पेय और पकवानों से उनकी रसना तृप्त की जाती। भांति-भांति के आनन्ददायक व्यवहार बरते जाते और इस प्रकार फूंक-फूंककर कदम रखा जाता कि अतिथि को कहीं कोई ठेस न लग जाय। यह समझिए कि सारा घर मेहमान के मुंह की ओर ताकता रहता कि इससे पहले कि श्रीमान् कुछ कहें उनकी फरमाइश पूरी करने का पूरा पूरा प्रयत्न किया जाय।

तो मैंने कहा कि एक तो वह युग था और एक आज है कि मेहमान का घर आना तो दूर, अगर कहीं किसी की चिट्ठी भी आजाती है कि हमारा विचार दिल्ली देखने का है तो सच मानिए नाड़ी अपना नियत स्थान छोड़ देती है और दिल की धड़कन कम-से-कम चारगुनी तो अवश्य ही बढ़ जाती है! हम विश्वास भी नहीं कर पाते कि यह सज्जन सच लिख रहे है या मजाक कर रहे है? दिल अन्दर-ही-अन्दर यह मनाता है कि हे भगवान, यह मज़ाक ही हो! और आप जानते ही है कि भगवान् महाशय हमेशा साथ नहीं दिया करते, इसलिए केवल भगवान पर ही भरोसा न करके हम अपनी विशाल दाहिनी भुजा में जो पांच अंगुलियां है, उनमें स्वयं 'पार्कर' सम्हाल लेते है और मित्र को लिखते हैं:—

"भाई, तुम्हारे दिल्ली आने के निर्णय से हमें खुशी हुई। तुम्हें देखे बहुत दिन भी तो होगये! आते तो बड़ा ही चित्त प्रसन्न होता। लेकिन मुझे दुःख है कि मैं स्वयं तुम्हें यहां न आने की सलाह लिख रहा हूं। मैं अपने बड़े-से-बड़े स्वार्थ के लिए भी तुम्हारा अहित नहीं सोच सकता। बात यह है कि वास्तव में यह मौसम दिल्ली आने का नहीं है। सफर में जो परेशानी होती है और रेलगाड़ियों में जो मुसीबत है वह तो दर किनार, उसे तो तुम जब आओगे, खुद भुगतकर ही समझोगे, मगर इतनी दिक्कत के बाद जब दिल्ली पहुँचेगे तो यहां का हाल देख कर तुम्हे भारी निराशा होगी। एक तरफ चेचक चल रही है तो दूसरी तरफ हैज़ा फैल रहा है! न कहीं आने के और न कहीं जाने के! दिन-भर घर मे कैद पड़े रहो और बाहर निकलो, तो आजकल न यहां कोई थियेट्रिकल कम्पनी है, न सिनेमाओं मे अच्छे खेल ही चल रहे है। फिर आजकल समय भी जरा बाहर निकलने का कम ही है। मेरी तो तुमसे मिलने की बड़ी इच्छा है, मगर क्या बताऊं परिस्थितियां मेरी भावनाओं को लाचार किये दे रही है और मैं तुम्हे यहां फिलहाल न आने की ही सलाह देने के लिए विवश हूं।"

अक्सर नेक आदमी हमारी इस सलाह को मान लेते है। पर भाई, पांचों अंगुलियां एक-सी तो होती नहीं? कुछ हमारे भी गुरु होते है कि बिना चिट्ठी-पत्री के ही दुर्भाग्य की तरह आ धमकते है!

जंगल में शेर की दहाड़ को सुनकर बछड़े के प्राण यों न सूख जाते होंगे जैसे मेहमान की नमस्ते से हमारे होश हिरन होजाते है! मेहमान की मुसीबत से बचने के लिए हमने कुछ कम पेशबन्दियां नहीं की है, जैसे, मकान छांटकर उस जगह लिया है जहां न तांगा पहुँच सकता है न रिक्शा, न पालकी, न टट्टू। गली के अन्दर गली इस कदर जाती है कि कोई भूलभुलैयां बनाने वाला आकर मेरे मकान के नक्शे को देखे कि यहां तक पहुँचना कितनी बहादुरी की बात है! और फिर मकान तक पहुचने से ही कोई हम तक पहुंच जाता हो, ऐसी बात नहीं है। जीने के ऊपर जीना और कमरे के बाद कमरा, इस कदर चला जाता है कि जब तक कोई म्युनिसिपैलिटी के भोंपू की-सी आवाज में ही हमारे नाम का उच्चारण न करे, हमारे कान पर जूं नहीं रेंग सकती!

फिर सुनकर हम जवाब दे ही देंगे, इसकी क्या गारंटी है? पहले लड़के को भेजेंगे कि देखो कौन है? कैसा है? फिर लड़के की रिपोर्ट पर श्रीमतीजी खिड़की से उझक-ताककर मुआयना फरमायेंगी कि कहीं सामान तो साथ में नहीं है, बच्चों-कच्चों की पलटन तो अलग इन्तजार नहीं कर रही? जब श्रीमतीजी सिगनल दे देती है और हम समझते है कि 'लाइन क्लियर' है तो पहले हम तिखने के ऊपर से झांकते है और जब तक बहुत ही हानि-नुकसान का प्रश्न न हो, हम ६६ प्रतिशत कहलवा देते है कि बाबूजी बाहर गये है!

पर आप समझिए कि सारी अक्ल का ठेका हमने ही थोड़े ले रखा है! भगवान ने एक-से-एक विचित्र खोपड़ियां, यानी महापुरुष, इस धराधाम पर अवतीर्ण किये है! लोग यह जानकर कि किले में, यानी घर मे, तो हम अजेय हैं, हम पर बाहर सड़क पर, यानी खुले में हमला करते हैं! दफ्तर में सीधे पहुँचते है!

लेकिन इसके पहले कि वह हमसे कुछ कहें, हमने भी कुछ गुर याद कर रखे है। हाथ मिलते ही, हम उनसे प्रश्न करते हैं कि कहिए, कहां टिके है? और तत्काल ही उनके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही दूसरा वार किया जाता है कि कब जारहे है? अगर इन दो तीरों से भी कोई बहादुर बच जाता है तो फिर हम अपना अमोघ ब्रह्मास्त्र चलाते है—बोलिए, नाश्ता-वास्ता तो कर आये है न?

मानना पड़ेगा कि दुनिया मे अभी शरीफ आदमियों की कमी नहीं है। अगर भले आदमी न हों तो धरती-आसमान कैसे टिके रह सकते है? तो, मैंने कहा, हमारे इन प्रश्नों को सुनकर विरला ही आदमी हमारे यहां टिकने की हिम्मत कर सकता है! अक्सर लोग घबराकर कह ही तो जाते हैं कि जी, सब कुछ ठीक है, आप तकलीफ न करें!

लेकिन, उनके लिए क्या किया जाय जिन्हे हमने गलती से, अनजाने मे ही, बचपन में दोस्त मान लिया नहीं, कह दिया था! जो हमारे रौब को रौब नहीं समझते, प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठा नहीं मानते और हमारी मुसीबत में हंस-हंसकर मजा लेते है। असल मे हाथ हम इन्हीं लोगों के आते हैं! जो न चिट्ठी देते है, न जिन्हे हमसे कुछ पूछने की ज़रूरत है और हम चाहे पाताल में छिपकर क्यों न बैठ जायं, वे हमारी

खोज निकालने में एकदम शैतान की तरह समर्थ है। आपको तो पता चलेगा पीछे, इससे पहले ही आपकी बैठक पर सदल-बल उनका कब्ज़ा होचुका होगा! उन्हें रोक भी कौन सकता है? कमबख्त, हमारे घर में घुसते ही बच्चों को अपना भतीजा बना लेंगे, हमारी मां के पहले ही झुककर चरण छू लेंगे और नौकर को इस अधिकार से हुक्म देंगे गोया जैसे वह तनख्वाह हर महीने इन्हींसे पाता है!

इन लोगों का इलाज, सच पूछिए, हमारे पास नहीं, इनकी दवा दरअसल हमारी देवीजी के पास है। मेहमान के घर मे आते ही 'वे' वह रूप धारण करती है कि कभी-कभी तो हमको भी यह पहचानने मे देर लग जाया करती है कि आखिर यह हमारे ही बच्चे की मां है या कोई और ही हैं!

अक्सर मेहमान के घर में दाखिल होते ही वे बीमार होजाया करती हैं और उनके स्वभाव में रूखापन भी कुछ अधिक आ जाता है। औसतन उन दिनों हमारे घर में बच्चे ज्यादा पिटा करते हैं, बर्तन अधिक टूटा करते हैं और दाल-शाक में मिर्चें अपनी उपस्थिति जोर-शोर से सूचित किया करती हैं। अक्सर मेहरी को इन दिनों जवाब दे दिया जाता है, और हमारी श्रीमतीजी जो आये-दिन घर की देहली के बाहर पैर तक नहीं निकालतीं, इन दिनों तीन-तीन चार-चार घंटे सहेलियों के यहां जाकर ताश खेलने मे अपने बेकार समय का सदुपयोग किया करती हैं!

हमारे घर में वह दृश्य देखने लायक होता है कि जब मेहमान नहाने के लिए लोटा मांगते है तो उन्हे कटोरी मिलती है! लगाने को साबुन मांगते है तो कपड़े धोने का डंडा पकड़ा दिया जाता है! खुशबूदार तेल मांगते है तो सरसों के तेल की बोतल बढ़ा दी जाती है! कहते है कि भगवान शिव समुद्र मे से निकले विष को कंठ मे उतार गये थे, लेकिन वे दिल्ली मे हमारे मेहमान बनकर आयें, मेरी चुनौती है कि विष तो दूर, वे हमारी यहां की अमृतोपम दाल तक को गले के नीचे नहीं उतार सकते! न जाने किस बजरी से छान-छानकर श्रीमतीजी इसमे मेहमान के लिए वह कुटकियां मिलाती है कि खाने वाले को छठी का दूध याद आजाता है और आगे से मेरे यहां आना तो दूर किनार

भला आदमी दिल्ली की तरफ पैर करके भी सोने की हिम्मत नहीं करता !

आप इसे सुनकर शायद मुझे और मेरी श्रीमतीजी को कोसेंगे और कहेंगे कि हम भी क्या मनहूस आदमी है जो मेहमान से यों बिदकते है ! यह तो असामाजिकता है ! ऐसा आदमी तो समाज मे रहने लायक नहीं !

मैं आपसे विनम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूँ कि अपनी सामाजिकता आप अपने तक ही रहने दे ! मै हरगिज भी इन बातों मे आने वाला आसामी नहीं हूँ।

हां, मै यह जानता हूँ कि मेहमानों की खातिर कर-करके लोग बड़े ऊंचे पदों पर पहुंच गये है। अपनी मेहमाननवाजी के कारण ही आज बहुत से साधारण आदमी नेता बने हुए है। लोगों को चाय पिला-पिलाकर वकीलों ने अपनी वकालत जमा ली है, डाक्टरों की आमदनी बढ़ गई है, लेखकों की रचनाएं संपादकों को पसंद आने लगी है ! यही नहीं, बेकार आदमी बाकार होगये है, ठेकेदारो को दूने ठेके मिलने लगे है और कहां तक कहूँ चोरबाजार करने वालों ने भी अपनी मिलनसारी और मेहमाननवाजी से लाखों के वारे न्यारे कर डाले है !

तो क्या आप समझते है कि मेरे मन में ऐसे कोई अरमान नहीं है ?

हैं, जरूर है ! पर भाई मेरे, मैं कुछ अपनी और कुछ अपनी 'उन'की सुनहली आदतों से मजबूर हूँ ! हां, ऐसे नुस्खे की तलाश में अवश्य हूँ जिससे बिना दैहिक और आर्थिक कष्ट उठाये, मेहमान की खातिर का पूरा-पूरा फायदा उठाया जा सके। देखो, भगवान कभी-न-कभी तो सुनेंगे ही !

नौकर ने नाक में दम....!

"चतुर बुद्धा ने इस कमाल से घर में अपनी 'पोजीशन' मजबूत की है कि अगर हम उससे कुछ कहते हैं तो उसकी 'बीबीजी' हमारे सिर हो जाती है, और बीबीजी ही कभी उसे डांटने लगती है तो बच्चे सर पर आसमान उठा लेते हैं। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि वह तो खैर हुई जो बुद्धा ने पिछले आन्दोलनों में भाग नहीं लिया ! सच कहता हूँ कि अगर वह कहीं राजनीति में पड़ गया होता तो आज कहीं का 'मिनिस्टर' हुआ होता !"

"आइए बाबू बुद्धसेन, आप क्यों तकलीफ करते हैं, यहां विराजिए, लीजिए जल पीजिए।"

६

हमको तो भगवान ने नाहक मनुष्य बनाया। यह भटकी हुई जीवात्मा तो किसी भी पशु-पक्षी के चोले मे आसानी से फ़िट हो सकती थी। भला बताइए, जन्म मिले मनुष्य का और सामना करना पड़े मुसीबतों का ! यह भी कोई बात हुई ?

पर खैर, जब सातवें आसमान पर बैठे हुए अल्लाताला और कमल की पतली डंडी पर आसन जमाये हुए बूढ़े ब्रह्मा बाबा ने, बिना विधान-शास्त्रियो से सलाह लिये हुए आदमी बना ही डाला तो कम-से-कम उन्हे इतनी कृपा तो करनी ही चाहिए थी कि इस ५ फ़ुट ६ इंच के बिना पंख-पूंछ वाले प्राणी को और सब नियामतें बख्शते, पर मेहरबानी करके उसे अक्ल तो नही ही देनी चाहिए थी। इस गरीब को अक्ल क्या मिली, यह समझिए कि सब कुछ चौपट होगया !

अब अक्ल के मारे इस आदमी की कोई एक मुसीबत हो तो बयान की जाय, कोई एक परेशानी हो तो उसका जिक्र भी हो, इस समय तो हाल यह है कि इस अक्लवर ने अपने ऊपर बुद्धिमानी का लिहाफ इस कदर लपेट लिया है कि उसकी सही सूरत नजर ही नहीं आती।

एक युग था जब वह गुफाओं मे आराम मे रहता, शिकार करता और ठाठ से पड़ा-पड़ा खुर्राटे भरा करता था—न ऊधो का लैन और न माधो का दैन ! पर अक्ल जो आई तो सब चौपट कर दिया ! सभ्यता आई, सोसाइटी आई, समाज बना और इज्जत-आबरू की चाह होने लगी। और इस सब का परिणाम हुआ कि मकड़ी अपने जाले मे खुद ही उलझ गई ! अब तो हाल यह है कि आदमी समाज से परेशान है,

सभ्यता से परेशान है, सोसाइटी से परेशान है ! और-तो-और अपने बीवी-बच्चों से भी उसे चैन नसीब नहीं ! परेशानी की इस कहानी का सिलसिला यहीं समाप्त नहीं होता ! आप हैरान होंगे कि जिसे आज रखा और कल निकाला जा सकता है, उस नौकर के मारे भी आदमी की नाक में दम है !

आप कहेंगे कि नौकर और नाक में दम ! भई, यह भी एक ही रही ! पर यकीन मानिए कि इसमें तिल-भर भी झूठ नहीं। नौकर की परेशानी आज सबसे बड़ी परेशानी है।

हालांकि यह समझिए कि लड़ाई और मंहगाई ने कचूमर निकाल रखा है, और हाल पतला क्या कहूँ करीब-करीब खस्ता होचला है, मगर लटा हाथी भी आप जानते हैं त्रिटौरा होता है, तो पुश्तैनी रईसी आदमी की क्या कभी जाती है ? कुछ और न हो घर में कम-से-कम एक नौकर तो होना ही चाहिए !

और साहब, आप कुछ भी कहें, बिना नौकर के आज के हम 'जैन्टिलमैन' काम भी तो नही चला सकते। माना कि शाक-भाजी आप खुद ही ले आते हैं, और माना कि आपको खुद ही बाज़ार से सौदा-सुलुफ करने का शौक है, लेकिन यह तो बताइए कि आप कोट-पैन्ट पहनने वाले १२५) के बाबू क्या चक्की पर खुद आटा पिसाने जाना मंजूर करेंगे ?

मान लिया कि वह भी आप साइकिल के कैरियर पर कनस्तर टिकाकर, जरा गर्दन झुकाकर आसानी से कर लेते है; और मान लिया कि क्लाथ राशन की दूकान से कपड़ा आपकी श्रीमतीजी खुद ही आप से लाख दर्जे अच्छा ले आती हैं; और यह भी माना कि हफ्ते का राशन भी आप नमक-मिर्च की तरह आसानी से झोले में दबा लाते है, लेकिन यह तो बताइए, उस एक बोतल मिट्टी के तेल के लिए कनस्तरी पकड़-कर आप दोनों मे से कौन लाइन में लगने को तैयार है ? जहां तक मेरा सवाल है मैं तो अन्धेरे में राम नाम जपना ज्यादा पसंद करूंगा, बजाय इसके कि श्रीमतीजी से इसकी चर्चा करूं और अपनी शामत को खुद ही दावत दूं ! और मेरे बारे मे तो आप हमेशा के लिए ध्यान रखिए कि मैं तो १०० औं फूट जाने पर ही किसी काम के करने को

राजी होता हूँ, नहीं तो अपना आदर्श सिद्धान्त तो यह है कि

अजगर करें न चाकरी, पंछी करें न काम।
दास मलूका कह गये, सब के दाता राम॥

फिर आप ही बताइए कि हम-जैसे दो चार यार-दोस्त जब आपके यहां दर्शन देने खुद ही तशरीफ ले आयें तो भले आदमी होने के कारण, आप और कुछ न सही, गरम पानी पिलाना तो अपना फर्ज समझेंगे ही? अब बताइए कि उस समय आप क्या खुद ही क्राकरी साफ करेंगे और दूध खत्म होगया हो तो मेहमानों पर सूना घर छोड़कर खुद ही दौड़े-दौड़े बाजार जायंगे? कभी नहीं। उस समय तो आपको मेरी ही तरह मेज पर टांगें फैलाकर 'बुद्धा' को ही आवाज़ देना अधिक पसंद आयेगा।

या छोड़िए, इस २०वीं सदी में दोस्तों को आप ज्यादा मुंह लगाना पसन्द नहीं करते, लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि आपकी श्रीमतीजी आपके इस आदर्श के पीछे अपनी सहेलियों को नहीं छोड़ सकतीं। 'वे' उनके यहां ठाठ से जायेंगी और उन्हें अपने यहां सादर बुलायेंगी भी! जहां तक श्रीमतीजी का सम्बन्ध है, आप बला से फटे हाल रहें, मगर 'वे' घर से बाहर, खास तौर पर सहेलियों या रिश्तेदारों के सामने, अपने 'स्टैन्डर्ड' को तनिक भी गिरा हुआ बर्दास्त नहीं कर सकतीं!

अब आप खुद पसंद कर लीजिए कि जब 'वे' अपनी सहेलियों के यहां जाने लगें तो फल-मिठाई की तश्तरियों के साथ छोटे मुन्ने को संभालने के लिए आप एक सेवक की आवश्यकता अनुभव करते है या ऐसे नाज़ुक मौके पर खुद स्वयंसेवक बन सकने की हिम्मत आप में है?

तो इन्हीं महासंकटों से परित्राण पाने के लिए हमने अपने यहां बाबू बुद्धिसेन बनाम बुद्धा को, नौकर क्या कहें, मालिक रख छोड़ा है!

बुद्धा साहब जब आये-आये थे तो इनकी सेवा-चाकरी का क्या कहना था? पहले उठना, बाद में सोना, कम खाना और जो दे दें, उसी मे मगन रहना! कोई एक खूबी हो तो कहा जाय? काम करने में चुस्ती और मुस्तैदी तो इस कदर थी कि कहे पर काम किया तो क्या किया? इशारों पर नाचते थे इशारों पर!

कुछ ही दिनों में हजरत हमारे परिवार के अंग बन गये। हम उनपर प्रसन्न रहने लगे। उनकी 'बीबीजी' का दुलार उन्हें प्राप्त होगया, बच्चे उनसे हिल गये और हमारे घर-बाहर की अच्छी जानकारी उन्हें होगई।

यह समझिए कि हम बुद्धा के भरोसे निश्चिन्त होगये। लेकिन जिस दिन से हमारी निश्चिन्तता की बात बुद्धा की बुद्धि में भी आगई, बस, उसी दिन से हमारी परेशानियों का सिलसिला भी शुरू होगया।

बुद्धा ने धोती छोड़कर पाजामा अपनाया तो हम खुश हुए, और जब उसने हमारी अधबरती पतलून पर भी एक दिन हाथ साफ किया तो हमने गिला नही माना, लेकिन जब उसने एक दिन यह कहा कि बाबूजी २०) में मेरा काम नहीं चलता, या तो ३५) कीजिए नहीं तो मुझे किसी और को बाबूजी कहना पड़ेगा, तो हमारे कान एक-दम खड़े होगये !

पर क्योंकि बुद्धा के बिना हम अपंग थे, इसलिए जैसे भीगी बिल्ली चूहों से कान कटाती है, वैसे ही हमने चुपचाप ३५) मंजूर कर लिए और पुण्य लूटने की खातिर अपने मन मे यह भी सोच लिया कि आखिर २०) आजकल होते ही क्या है ?

लेकिन बुद्धा कोई बुद्धू तो है नहीं ! वह फौरन हमारी नस पहचान गया ! अब तो वह कम्बख्त काम के दाव ही नही आता। दो-दो तीन-तीन आवाजे पी जाना तो उसके बाये हाथ का खेल था। चौथी-पांचवीं आवाजों पर भी तबियत हुई तो हाजिर हुआ, और नही तबियत हुई तो जैसे हमारे घरों मे स्त्रियाँ फकीरों को 'हाथ खाली नही है' कहकर टाल देती है, वैसे ही बाबूजी ने आवाज दी तो बीबीजी का काम कर रहा हूं और बीबीजी ने आवाज दी तो बाबूजी का काम कर रहा हूं, कहकर, वह टाल बताता है कि कुछ कहते नहीं बनता !

चतुर बुद्धा ने इस कमाल से घर मे अपनी पोजीशन मजबूत की है कि अगर हम उससे कुछ कहते है तो उसकी 'बीबीजी' हमारे सिर हो जाती है और अगर बीबीजी ही कभी उसे डाटने लगती है तो बच्चे सर पर आसमान उठा लेते है ! कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि वह तो खैर हुई, जो बुद्धा ने पिछले आन्दोलनों में भाग नहीं लिया, सच कहता

हूँ कि अगर वह कहीं राजनीति में पड़ गया होता तो आज कहीं का मिनिस्टर' हुआ होता !

अभी पिछले दिनों की बात है, चार दोस्त घर पर आगये। हमने बुद्धा से कहा, "भई जा, पानी गरम करने रख दे और अपनी बीबीजी से बोल कि साथ के लिए कुछ फुर्ती से तैयार करदे।"

बुद्धा को शायद उस वक्त सिनेमा जाना था। उसे बे-वक्त की यह खतिरदारी बिलकुल पसन्द नहीं आई। बोला, "बाबूजी, पानी तो अभी रखे देता हूँ, पर बीबीजी की तबियत आज कुछ ठीक नहीं है।

मैं जानता था कि उनकी तबियत को कुछ भी नहीं हुआ, पर बुद्धा से क्या कह सकता था, बोला, "जा देख तो सही, तबियत ठीक है।"

तो दोस्तों की तरफ मुँह करके निहायत भला आदमी-सा बन कर बोला, "बाबूजी तो घर की बिलकुल परवाह ही नहीं करते। कई दिन से उनकी तबियत खराब चल रही है। पर वह तो यों कहो कि बीबीजी साक्षात् लक्ष्मी का अवतार है जो किसी से कुछ कहती-सुनती नहीं। आज जब बिलकुल तबियत गिर गई है तो क्या करें? इस कदर सिर मे दर्द और हरारत है कि मैं कुछ कह नहीं सकता।

दोस्त लोग चाय को भूल गये और उलटा मुझे ही सख्त-सुस्त कहने लगे। बेचारे अपना-सा मुँह लेकर लौट गये। मुझे ऐसा गुस्सा आया कि बुद्धा को अभी गोली मारदूँ। तभी श्रीमतीजी कहने लगीं "चलो रहने दो, आखिर क्या बिगड़ा, इस राशन के जमाने मे कुछ बचा ही तो!"

झुँझलाकर कई बार सोच चुका हूँ कि इसे जवाब दे दिया जाय। पर जब-जब यह सवाल उठता है तब-तब अक्सर घर की 'केबिनेट' मे फूट पड़ जाती है। जब कभी पति होने के नाते अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करना चाहता हूँ तो सोचता हूँ कि आखिर नौकर के बिना काम चल भी तो नहीं सकता! न जाने कौन कैसा आये, और आये-ही-आये, इसकी क्या गारण्टी है?

फिर बुद्धा की खूबियों का भी ख्याल आता है, वह सब-कुछ हो चोर नहीं है। फिर उसे ऐतराज तो छू भी नहीं गया। 'पीर, बावर्ची,

भिश्ती, खर' वाली जो कहावत है वह बुद्धा जैसे लोगों को देखकर ही ईजाद हुई होगी।

पर क्या कहें, आजकल बुद्धा के पर निकल आये हैं। कामचोर तो क्या कहूँ, वह मौजी होगया है। बिलकुल ऐसा जैसा हिन्दी का कलाकार! उसके मन मे आये तो कोल्हू के बैल की तरह दिन-भर लगा रहे और मन में न आये तो बुखार का बहाना करके वह लम्बी ताने कि कुम्भकर्ण भी मात होजाये। कहो तो उससे चाहे जो कहे जाओ, गीता के स्थितप्रज्ञ की तरह सुनता रहे और चेहरे पर एक शिकन भी न आने दे और न कहो तो वह 'कम्युनिस्ट' बन जाय कि मारे तर्क-कुतर्कों के आपका बोल बन्द करदे। कभी तो आपको वह इज्जत बख्शे कि आप थोड़ी देर के लिए खुद को दूसरा शहंशाह ही समझने लगे और कहो तो ऐसी किरकिरी करे कि आपको कहीं मुँह दिखाने की ही गुँजायश न रहे।

अब आपसे क्या कहूं, हाल यह है कि न उसे निकाले चैन है, न रखे चैन है! और वह भी भला आदमी न जाने का नाम लेता है और न ढग से रहने की ही बात करता है! शायद यह जो कहावत है कि "मुझको और न तुझको ठोर" वह हमारे मामले मे सोलहों आने सही है।

कवि-सम्मेलनों का धन्धा !

"कवि-सम्मेलनों के लिए आपको चाहिए ही क्या ? बस, एक जोड़ी पोशाक और एक जोड़ी कविता ! इन्हीं दो जोड़ियो के बल पर आप कवि-सम्मेलन का दंगल फतह कर सकते है। और अगर दंगल फतह होगया तो फिर क्या है ? फीस और किराया तो पिट जाने पर भी मिला करता है। लेकिन अगर कहीं तालिया जरा जोर से पिट गईं तो इनाम-इकराम लीजिए, मैडल दुशाले लीजिए और अगर कोई आँख का अन्धा और गाँठ का पूरा फंस गया तो बस जनम-भर मौज किये जाइए।"

"आप मेरी तरह से एक आदमकद आइना अपनी बैठक में लगाइए, कविता लेकर उसके सामने बड़ी शान से खड़े होजाइए और समझ लीजिए कि घर में ही कवि-सम्मेलन हो रहा है।"

७

आपने धन्धे-रोजगार बहुत-से देखे-सुने होंगे, लेकिन जिस अनूठे व्यवसाय की तरफ मैं इशारा करना चाहता हूँ, वह ऐसा लाजवाब है कि दुनिया में उसकी मिसाल ढूंढ़े नहीं मिल सकती!

सोने-चाँदी के सट्टे से लेकर नमक-मिर्च की दूकानदारी तक जितने भी धन्धे आज दिन है, उन सब मे थोड़ी या बहुत, पूंजी की आवश्यकता होती ही है। लेकिन जिस रोजगार के बारे में कि अभी आपसे मैं जिक्र करूँगा उसमें पूंजी की बिलकुल ही आवश्यकता नहीं! बल्कि सचाई तो यह है कि पूंजी का होना ही इस रोजगार को उलटा हानि पहुँचा सकता है!

कोई काम लेकर बैठिए, एक ठीया तो चाहिए-ही-चाहिए। मतलब यह कि दूकान या गोदाम मिलना चाहिए, आफिस या कमरा चाहिए और आप जानते है कि आजकल लूटने पर माल मिल सकता है, भागने पर बहादुरी मिल सकती है, लेकिन रहने को मकान कहीं नहीं मिल सकता! पर वाह रे मेरे नये रोजगार! इसमें आपको किसी किस्म के मकान, दूकान या साइनबोर्ड की आवश्यकता नहीं! बिना किसी 'लेटरहेड' या लिफाफे के आपकी खतो-किताबत जारी रह सकती है और बिना 'कैशमेमो' काटे आप इस नये चोरबाजार में साहूकार हो सकते है।

यहां इस बात की भी आवश्यकता नही कि आप टीमटाम से रहे और कुछ पढ़े-लिखे-से भी दिखाई दें! यह रोजगार तो चन्द चतुरों ने वह कमाल का निकाला है कि आप जितने अधिक फटे हाल

होंगे, जितने अधिक अस्त-व्यस्त दिखाई देंगे और जितनी अधिक अट-पटी या बेतुकी बात कर सकेंगे, उतने ही अधिक मुनाफे में रहेंगे !

मज़ाक नहीं करता। मेरी बातों को आप शेखचिल्लीपन न समझिए। ईमान से, ऐसा प्रतिष्ठित व्यवसाय जिसमें धन और यश दोनों एक साथ ही प्राप्त होते हों, दुनिया मे शायद ही कोई दूसरा हो। और, इस जैसा निर्मल पेशा तो दूसरा है ही नहीं !

हमारी वर्णमाला में जो क, ख, ग, घ, न पढ़ाये जाते हैं, आपने कभी सोचा है, उनका एक गूढ़ार्थ भी है ? यानी पहले 'क'माओ, फिर 'खा'ओ, फिर 'ग'हने बनवाओ, फिर 'घ'र खड़ा करो और तब 'ना'म करो। आप समझे, मतलब यह है कि इस काले सिर वाले आदमी का अन्तिम लक्ष्य नाम पैदा करना ही है। नाम-रोशन करने के लिए लोग बदनामी तक से नहीं डरते। कम्बख्त कहते है, 'बदनाम भी होंगे तो क्या नाम न होगा ?'

तो, इस नये रोजगार में बस नाम-ही-नाम है ! अगर किसी तरह आपका नाम होजाता है, तो घर, गहने, खाना और कमाई तो सब उसी में से आप-ही-आप आ जुटते है।

आप शायद इस लम्बी-चौड़ी भूमिका से ऊब चले हों और जल्द-से-जल्द इस अनोखे रोजगार की तह मे पहुँचना चाहते हों, लेकिन बात यह है कि मैं करूँ भी तो क्या ? इस रोजगार की खूबियों पर मैं इतना रीझा हुआ हूँ जितना कि पडित सुन्दरलालजी भी 'हिन्दुस्तानी' पर क्या रीझे होंगे !

अक्सर दूसरे व्यापारियों के बारे में आपने यह शिकायत सुनी होगी कि वह समाज से कुछ अलग-अलग-से रहते है ! वह भले कि उनकी दूकान भली, न किसी के लेन मे, न किसी के देन में। कहां क्या होरहा है इसकी जैसे कोई खबर ही नहीं। कहना चाहिए कि उनकी दुनिया बस अलग ही होती है।

लेकिन यहाँ के रोजगारियों का हाल न पूछिए। काजीजी दुबले क्यों, कि शहर के अंदेशे से। मास्को मे गोला गिरेगा और छत यहां की उड़ जायगी ! जुकाम स्टालिन होगा और छींके यहाँ आने लगेगीं। गरज यह कि कही महामारी पड़े, कही ज्वालामुखी फटे, इस

नये रोजगारी को अपने कोमल-से-कोमल बिछौने पर नींद नहीं आ सकती। तन-मन की सुधि बिसर जाती है। रह-रहकर आहों का दरिया उफन उठता है। तरह-तरह के उद्गार फूट उठते है! लेकिन यह सब होते हुए भी क्या मजाल जो रोजगार मे कहीं कोई खामी आये! बल्कि कहना चाहिए कि यही तो उनके धन्धे का 'सीजन' होता है। देश में जब कोई होनी या अनहोनी घटना घटे, तब यहां ऐसा समझना चाहिए कि कोई नये काम का ठेका जैसे और मिल गया हो!

और परिश्रम। वह तो इस उद्योग मे पड़ता ही नही। यहां तो बस फुर्सत-ही-फुर्सत है। ऐसी फुर्सत कि आप सबेरे १० बजे सोकर उठिए और शाम को ४ बजे फिर सोजाइए तो भी आपके काम मे कोई टोटा होने वाला नहीं है। दिन-भर सटरगश्ती कीजिए और रात को भी घर न आइए तो भी कोई पूछने वाला नही है। इस लाइन मे आकर आप परम स्वतंत्र है। आपके सिर के ऊपर कोई नहीं है! आप बनैले हाथी की तरह निरंकुश है, जंगली भैंसे की तरह अबाध हैं। जहाँ कोई नहीं पहुँच सकता, वहाँ आप पहुँच सकते हैं, जो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता, वह आप कर सकते है!

बस एक बात और। इतनी बेफिक्री और मनचाहा जीवन बिताने पर भी कोई आपकी तरफ उँगली उठाकर देखने वाला नहीं है। कोई निठल्ला और नाकाम बताकर आपसे नफरत करने वाला नहीं है। न धर्म का बन्धन, न कर्म का बन्धन, स्त्री-पुरुप कोई भी हो, यहाँ तो लोग राख के होकर आये और लाख के होकर लौटे हैं।

कहने को तो अभी और भी बहुत सी नई बातें हैं, पर क्योंकि मैं बात को जरा कम सोचने और शीघ्र ही कह डालने का आदी हूँ, इसलिए बहुत संक्षेप मे कहता हूँ कि यह नया रोजगार कविता या शायरी करना है! इसमे न कुछ लगाने को जरूरत और न गँवा बैठने का गम! न उम्र की जरूरत न अक्ल की आवश्यकता। आवश्यकता केवल इस बात की है कि जब आप कोई कविता या गीत लिखे, तब यह अवश्य समझले कि इसे पढ़ने वाले सब-के-सब अज्ञानी नहीं तो कम-से-कम आपसे तो कमअक्ल जरूर ही हैं! और कुछ न सही, उनके अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए ही आपका लिखते रहना बड़ा

जरूरी है। आवश्यकता इस बात की भी है कि जब आप अपनी अनमोल रचनाएँ सुनाएँ तो सुनने वाला चाहे एक हो या हजार हों, आपके हाव-भाव और स्वर में फर्क नहीं पड़ना चाहिए। यही नहीं, आपको हर समय यह बोध रहना चाहिए कि सारा समाज तृणवत् है और यदि किसी चीज की अहमियत है तो बस अहम् की।

कविता लिखने के लिए यह बिलकुल आवश्यक नहीं कि आप पिंगल पढ़े हों या आपने रीति-अलंकारादि का अध्ययन किया हो, अथवा नये-पुराने कवियों की सोहबत ही उठाई हो। सिर्फ आपके लिए आवश्यक यह है कि ऐसी पंक्तियाँ, चाहे तो आप स्वयं जोड़ सकते हों, या अगर सुभीता और पकड़े जाने का खतरा न हो तो दूसरों की भी ले सकते हों कि जिनसे तालियाँ बज सकें!

बस तालियाँ पिटना ही आपकी सफलता की चरम कसौटी है! वह नेता ही क्या कि जिसके भाषण मे तालियों की गड़गड़ाहट से शामियाने न उखड़ जायें, वह नर्तकी ही क्या जो दर्शकों के हाथ लाल न करदे और ऐसे ही वह कवि भी क्या जिसकी कविता पर भूचाल न आये, हंगामा न होजाये!

तालियाँ बजवाने का भी अपना एक अलग 'आर्ट' होता है। कवि-सम्मेलनों मे तालियाँ वह पिटवा सकता है जिसने रामकृपा से कला से अधिक गला पाया हो, कवि से अधिक जो एक्टर हो, शाश्वत से अधिक जो सामयिक हो, बौद्धिक से अधिक जो रसिक बनने की कोशिश में सफल होगया हो!

और क्या कला और क्या गला! हम तो यह मानते है कि यह सब चीजे आत्मविश्वास के वशीभूत हैं! मेरे पास इस कला और गला को मांजने का एक रामबाण उपाय है। वह यह कि आप दूर किसी जंगल मे, एक पक्के कुंए मे, पैर लटकाकर बैठ जाइए। सिर झुकाकर जल देवता को प्रणाम कीजिए और कहिए आ SSS! बस, उत्तर में कुँआ भी आपसे कहेगा, "आइए भाई साहब, आइए!" इस प्रकार लगातार कुँए मे मुँह देकर आप स्वर-संधान किये जाइए और उस अकेले कुँए को आप अपने स्वर-बाणों से भर दीजिए। थोड़ी ही देर में यकीन मानिए, आपको विश्वास हो जायगा कि सचमुच आपकी

आवाज में भी बड़ा दम है......और सहगल तो मर ही गये, अब दूसरा कौन है जो आपसे बाजी ले सके! कुछ ऐसा समझ लीजिए कि आपको लगेगा कि कुँए की आवाजों से, संगीत की लहरें-सी फूट रही हैं, उन लहरों से ऋचाएँ-सी निकल रही है, उन ऋचाओं से कुछ अर्थ-से प्रतिभासित होरहे है और उन अर्थों को व्यर्थ करने की सामर्थ्य किसी भी कर्महीन आलोचक में नही है।

अगर आपके आसपास कोई कुँआ न हो और उसमें डूब मरने का खतरा भी आपके सामने हो, तो फिर आप मेरी तरह से एक आदम-कद शीशा अपनी बैठक मे लगाइए। कविता लेकर उसके सामने बड़ी शान से खड़े होजाइए और समझ लीजिए कि घर मे ही कवि-सम्मेलन होरहा है!

इस प्रकार की साधना के बाद निश्चय ही आपको यह विश्वास होजायगा कि आप कवि बनने की वह सब खूबियाँ रखते है जो वाल्मीकि या व्यास में थीं, भास या कालिदास में थीं, सूर या तुलसीदास मे थीं! और आप जानते है कि आत्मविश्वास दुनिया मे बहुत बड़ी चीज है। जिस दिन आपको यह विश्वास होगया कि आप कवि है, बस उसी दिन यह समझ लीजिए कि दुनिया की कोई शक्ति आपको कवि बनने से रोक नहीं सकती। एक नहीं, लाख बनारसीदास आपके पीछे पड़े, करोड़ों कालिज के लड़के आपका मजाक बनाये, हजार ईर्षालु आपको तुक्कड़ कहे! मगर कोई आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हाँ, आपको नयेपन के पीछे अवश्य दौड़ना पड़ेगा ताकि लोग यह कह सके कि बात कुछ सुन्दर और अभूतपूर्व तो है, लेकिन वह सुन्दरता और नयापन दूरबीन से देखने पर भी दिखाई न पड़े!

तो मैंने कहा, जितनी भी अटपटी चमत्कारिक, बेतुकी और मुक्त वाणी आप कह सकते हैं, आजकल आप उतने ही बड़े कवि करार दिये जा सकते हैं।

अब आप शायद कहने लगे कि यह तो बड़ा आसान है। मान लो हम कवि तो बन गये, मगर इसमे रोजगार कहाँ है? यह तो बेकारी का धंधा है, जनाब!

जरूरी है। आवश्यकता इस बात की भी है कि जब आप अपनी अनमोल रचनाएँ सुनाएँ तो सुनने वाला चाहे एक हो या हजार हों, आपके हाव-भाव और स्वर में फर्क नहीं पड़ना चाहिए। यही नहीं, आपको हर समय यह बोध रहना चाहिए कि सारा समाज तृणवत् है और यदि किसी चीज की अहमियत है तो बस अहम् की।

कविता लिखने के लिए यह बिलकुल आवश्यक नहीं कि आप पिंगल पढ़े हों या आपने रीति-अलंकारादि का अध्ययन किया हो, अथवा नये-पुराने कवियों की सोहबत ही उठाई हो। सिर्फ आपके लिए आवश्यक यह है कि ऐसी पंक्तियाँ, चाहे तो आप स्वयं जोड़ सकते हों, या अगर सुभीता और पकड़े जाने का खतरा न हो तो दूसरों की भी ले सकते हों कि जिनसे तालियाँ बज सकें !

बस तालियाँ पिटना ही आपकी सफलता की चरम कसौटी है ! वह नेता ही क्या कि जिसके भाषण में तालियों की गड़गड़ाहट से शामियाने न उखड़ जायें, वह नर्तकी ही क्या जो दर्शकों के हाथ लाल न करदे और ऐसे ही वह कवि भी क्या जिसकी कविता पर भूचाल न आये, हंगामा न होजाये !

तालियाँ बजवाने का भी अपना एक अलग 'आर्ट' होता है। कवि-सम्मेलनों में तालियाँ वह पिटवा सकता है जिसने रामकृपा से कला से अधिक गला पाया हो, कवि से अधिक जो एक्टर हो, शाश्वत से अधिक जो सामयिक हो, बौद्धिक से अधिक जो रसिक बनने की कोशिश में सफल होगया हो !

और क्या कला और क्या गला ! हम तो यह मानते है कि यह सब चीजें आत्मविश्वास के वशीभूत है ! मेरे पास इस कला और गला को मांजने का एक रामबाण उपाय है। वह यह कि आप दूर किसी जंगल में, एक पक्के कुंए मे, पैर लटकाकर बैठ जाइए। सिर झुकाकर जल देवता को प्रणाम कीजिए और कहिए आ SSS ! बस, उत्तर में कुँआ भी आपसे कहेगा, "आइए भाई साहब, आइए !" इस प्रकार लगातार कुँए मे मुँह देकर आप स्वर-संधान किये जाइए और उस अकेले कुँए को आप अपने स्वर-बाणों से भर दीजिए। थोड़ी ही देर में यकीन मानिए, आपको विश्वास हो जायगा कि सचमुच आपकी

आवाज में भी बड़ा दम है ......और सहगल तो मर ही गये, अब दूसरा कौन है जो आपसे बाजी ले सके! कुछ ऐसा समझ लीजिए कि आपको लगेगा कि कुँए की आवाजों से, संगीत की लहरें-सी फूट रही हैं, उन लहरों से ऋचाएँ-सी निकल रही है, उन ऋचाओं से कुछ अर्थ-से प्रतिभासित होरहे है और उन अर्थो को व्यर्थ करने की सामर्थ्य किसी भी कर्महीन आलोचक में नही है।

अगर आपके आसपास कोई कुँआ न हो और उसमे डूब मरने का खतरा भी आपके सामने हो, तो फिर आप मेरी तरह से एक आदम-कद शीशा अपनी बैठक मे लगाइए। कविता लेकर उसके सामने बड़ी शान से खड़े होजाइए और समझ लीजिए कि घर में ही कवि-सम्मेलन होरहा है!

इस प्रकार की साधना के बाद निश्चय ही आपको यह विश्वास होजायगा कि आप कवि बनने की वह सब खूबियाँ रखते है जो वाल्मीकि या व्यास मे थीं, भास या कालिदास में थीं, सूर या तुलसीदास मे थीं! और आप जानते है कि आत्मविश्वास दुनिया मे बहुत बड़ी चीज है। जिस दिन आपको यह विश्वास होगया कि आप कवि हैं, बस उसी दिन यह समझ लीजिए कि दुनिया की कोई शक्ति आपको कवि बनने से रोक नहीं सकती। एक नहीं, लाख बनारसीदास आपके पीछे पड़ें, करोड़ों कालिज के लड़के आपका मजाक बनाये, हजार ईर्षालु आपको तुक्कड़ कहे! मगर कोई आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हाँ, आपको नयेपन के पीछे अवश्य दौड़ना पडेगा ताकि लोग यह कह सके कि बात कुछ सुन्दर और अभूतपूर्व तो है, लेकिन वह सुन्दरता और नयापन दूरबीन से देखने पर भी दिखाई न पड़े!

तो मैंने कहा, जितनी भी अटपटी चमत्कारिक, बेतुकी और मुक्त वाणी आप कह सकते हैं, आजकल आप उतने ही बड़े कवि करार दिये जा सकते हैं।

अब आप शायद कहने लगे कि यह तो बड़ा आसान है। मान लो हम कवि तो बन गये, मगर इसमे रोजगार कहाँ है? यह तो बेकारी का धंधा है, जनाब!

तो मै कहूँगा कि श्रीमान् जी वह जमाना तो लद गया कि जब खलीलखॉ फाख्ता उड़ाया करते थे, अब तो कवियों की चॉदी-ही-चॉदी है। इस पिछली लड़ाई मे जो बहुत-से उद्योग धंधों का विकास हुआ है, उनमें एक कवि-सम्मेलन का रोजगार भी है, जो बड़ी तेजी से फैल रहा है और पनप रहा है, और क्योंकि इस ओर अभी भारत के बड़े-बड़े उद्योगपतियों की निगाह नहीं गई है, इसलिए अभी इसमें छुट-भइयों को मुनाफा-ही-मुनाफा है!

आजकल यह रोजगार पूरी तेजी पर है। किसी की जयन्ती हो या कोई कहीं स्वर्गलोक जा पहुँचा हो! कही कोई वीर प्रसविनी कायर को जन्म दे, या किसी सुशील के नाक-कान छेदे जा रहे हों! मारवाड़ी मित्र-मण्डल का जलसा हो या चर्मकारों ने अपनी चौदस मनाई हो... कार्यक्रम मे आपको कवि-सम्मेलन अवश्य दिखाई दे जायगा।

कवि-सम्मेलनों के लिए आपको चाहिए ही क्या? बस, एक जोड़ी पोशाक और एक जोड़ी कविता! इन्हीं दो जोड़ियों के बल पर आप कवि-सम्मेलन का दंगल फतह कर सकते है! और अगर दंगल फतह होगया तो फिर क्या है, फीस और किराया तो पिट जाने पर भी मिला करता है। लेकिन अगर कही तालियॉ जरा जोर से पिट गईं तो इनाम-इकराम लीजिए, मैडल-दुशाले लीजिए और अगर कोई आंख का अंधा और गॉठ का पूरा फॅस गया तो बस जनम-भर मौज किये जाइए!

अगर कोई तकदीर का बन्दा न भी फॅसे तो क्या हर्ज है? आप दूसरों के नाम से कविता लिखिए, करारे पैसे मिलेंगे। शादियों के सेहरे बनाइए, नामा आयेगा। कविता पुस्तकों को दानियों को समर्पित कीजिए, अच्छी रकम हाथ लगेगी। और सबसे ऊपर यह कि एक किताब छपाकर सिनेमा या रेडियो मे ले दौड़िए, बस स्टार बन जायंगे और नौसिखिये लोगों से रुपया ऐंठने का एक अच्छा साधन प्राप्त हो सकेगा।

लेकिन एक बात याद रखिए, आप करिए चाहे कुछ, रोजगार आपका तभी फूले-फलेगा, जबकि आप कहते यह रहें कि हम तो [illegible] के सेवक है, हमे लक्ष्मी से कोई वास्ता नहीं। फिर देखिए कि [illegible]दी आपके पास स्वयं खिची चली आती है या नहीं!

बस की सवारी....!

"नाम ही इसका बस किसी ने छाँटकर 'बस' रख छोड़ा है। यानी बस,
रदार ! दौड़े-दौड़े आइए, घंटों लाइन में लगे रहिए, फिर भी, इस बात
कोई भरोसा नहीं कि बैठने को तो क्या, लटकने को जगह मिल ही
एगी !"

"हम रह जाते है और हमारी देवीजी बैठ जाती है !"

८
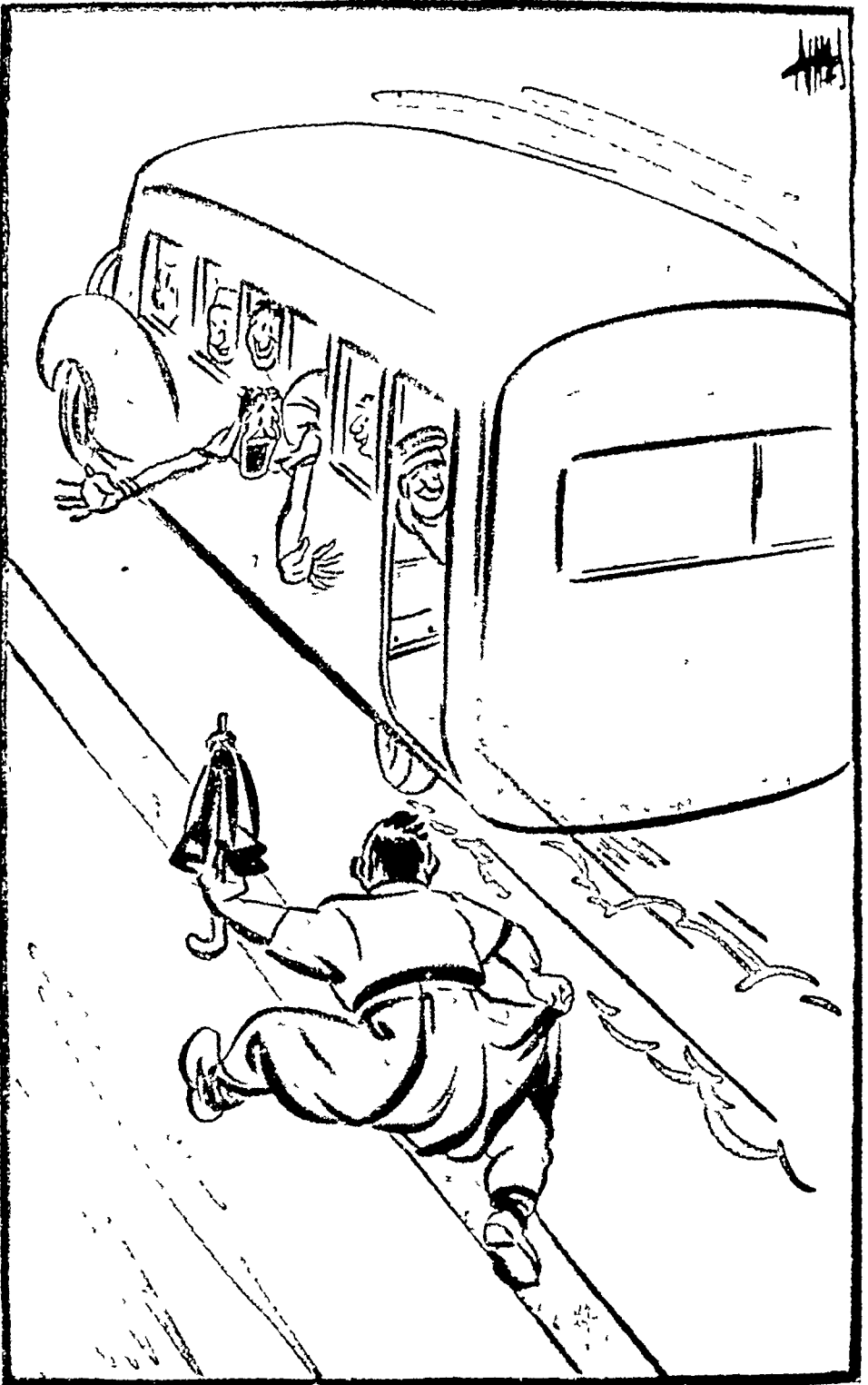
नाम ही इसका बस किसी ने छाँटकर 'बस' रख छोड़ा है। यानी बस, खबरदार! दौड़े-दौड़े आइए, घंटों लाइन में लगे रहिए, फिर भी, इस बात का कोई भरोसा नही कि बैठने को तो क्या, लटकने तक को जगह मिल ही जायगी! हर वक्त इस बात का खतरा सिर पर सवार रहता है कि न मालूम कब 'कण्डक्टर' महोदय अंगुली उठाकर कह बैठे—"बस, बाबूजी! 'बस' मे जगह नही रही!"

यह समझ लीजिए कि राम-कृपा से कोई ३४–३५ वर्ष की उम्र होने आई, हमने तो ऐसी कोई बेसब्री की सवारी देखी नहीं! बचपन मे अपने गाँव से यही कोई दो-दो आने मे बैठकर चौदह-चौदह मील दूर शहर आया करते थे। अहा, इक्के की सवारी भी क्या रईसी सवारी होती थी! चं-चूं चर्र-चूं छुन्न-छम्म छुन्न-छम्म ऐसी मस्तानी चाल से इक्का चलता था कि यदि आजकल के किसी कवि को अन्धेरे मे उसकी ध्वनि सुनाई दे जाती तो सचमुच वह यही समझ बैठता कि कोई 'विधुवदनी मृगशावक लोचनी' कहीं पनघट पर तो नहीं जा रही? और सिर्फ दो आने मे उस इक्के पर अपना एकाधिकार कितना होता था कि रास्ते मे जहाँ कहीं कोई कुंआ या प्याऊ देखी तो फौरन हुक्म चढ़ा दिया, "इक्के वाले, जरा रोकना भाई!" और खाली पानी की ही बात हो सो नहीं। चने का खेत देखा तो उतर पड़े, गाजर-मूली या मटर-टमाटर नजर आये तो इक्का रुकवा लिया। लेकिन अब, जनाब, इस नये जमाने मे एक आपकी 'बस' की सवारी है कि हम घंटों उसके इन्तजार मे लाइन मे लगे रहे इसका तो कोई एहसान नहीं, लेकिन बदकिस्मती से 'बस' के सर्राटे मे अगर हमारा बैग खिसक जाता है या

सोला कैप उड़ जाती है, या, भगवान न करे, हम रह जाते हैं और हमारी देवीजी बैठ जाती हैं, तो कण्डक्टर से आप लाख खुशामद कीजिए वह महाशय रुकने का नाम भी लेने वाले नहीं ! इसीलिए तो कहता हूँ कि और की तो क्या चली, हम जैसे भले आदमियों के लिए तो 'बस' पकड़ना भी एक मुसीबत का काम है !

जी हाँ, मुसीबत का काम है ! वह इस तरह कि क्या हुआ कि हमारी गाँठ में टके नहीं हैं और हम एक दफ्तर मे क्लर्क जैसी नौकरी करते हैं, लेकिन कहलाते तो बाबू हैं ! और हम न सही, हमारे खानदान वाले तो रईस थे ही—और हिन्दुस्तान मे ऐसा कौन है जो खानदानी रईस न हो ? सो श्रीमानजी, हम सवेरे उठते उस समय है जब श्रीमती जी पतीली में दाल चढ़ा देती हैं, और नहाते उस समय है जब थाली में रोटियाँ ठंडी होने लगती हैं। इसी तरह आप सोच सकते हैं कि 'बस-स्टैंड' पर हम कब पहुँचते होंगे !

अगर हमें बड़े बाबू की घुड़की का कोई खतरा न हो तो पहली से न सही दूसरी से, दूसरी से न सही तीसरी से, आखिर 'लंच-टाइम' तक खरामा-खरामा दफ्तर पहुँच ही सकते हैं, लेकिन पता नहीं हमारे बड़े बाबू बाल-बच्चे वाले नहीं हैं या भगवान ने आराम उनकी तकदीर में ही नहीं लिखा है, वह न जाने हमारी तरह से क्यों नहीं सोचते, और हम जैसे शरीफ लोगों को अकारण ही घूर-घूरकर देखते रहते हैं !

तो यह समझ लीजिए कि उसी वक्रदृष्टि का खयाल रखते हुए ही 'बस' वालों का मुँह जोहना पड़ता है कि भाई जरा टाइम पर पहुँचा दिया करें। हाँ, दूर से आते देखे तो जरा रुक जाया करें और सीट न भी हो तो हमें कहीं-न-कहीं टिका-लटका ही लिया करे ! लेकिन ये 'बस' वाले है कि जैसे मुरव्वत का पाठ इन्होंने सीखा ही नहीं। हम लाख मिन्नत और आरजू करते ही रह जाते है लेकिन 'बस' है कि जैसे सट्टे में लक्ष्मी खिसक जाया करती है बस, उसी तरह वह भी हमारे देखते-देखते आँखों के आगे से सरक जाया करती है !

अभी कल की बात है, १०॥ होगये थे और अपने राम अपनी सुस्ती और मस्ती पर खीझते-रीझते 'बस' की ओर लपक रहे थे। वहां पर पहुँचते ही क्या देखते हैं कि कोई बीस आदमी एक साथ अकेले

दरवाजे के अन्दर घुसने की जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं ! अच्छा खासा एक मल्लयुद्ध-सा होरहा है। किसी की पगड़ी उतरकर लम्बी होगई है तो किसी का कोट सींवन से चटक रहा है ! नौजवान बूढ़ों को ढकेल रहे है और वृद्ध कह रहे है, 'देखो हमारा भी पानी ! हमने जितना घी पिया है लड़को, तुम्हें उतना पानी भी नसीब नहीं हुआ होगा।' कोई नीचे से घुस रहा है तो कोई ऊपर से छलॉग मारने की कोशिश मे है और कोई पैतरा बदलकर बगल से हाथ मारना चाहता है ! बस, यह समझ लीजिए कि उस दर्शनीय दृश्य का ठीक-ठीक वर्णन नहीं किया जासकता। आपने शायद एक खेल देखा होगा। लोग बन्दरों के बीच मे एक गुड़ की भेली रख देते है और उसके आस पास १०-२० डंडे बिखेर देते है। तो जिस तरह उस अकेली गुड़ की भेली के पीछे बन्दरों में जैसे आपस की मारकाट होती है ठीक वही हाल उस 'बस' का था। अगर दूसरा कोई अजनबी आदमी देखता तो यही सोचता कि शायद इसमें कोई चॉदी की सिल या रुपये बिखरे पड़े हैं कि जो पहले पहुँच ले वही हाथ मार ले ! तभी तो इतनी हाय-हाय है !

अगर शहर मे कहीं दंगा होगया होता या कर्फ्यू लगने वाला होता और यह आखिरी 'बस' होती तो भी इस धक्कम-धक्के की बात कुछ समझ मे आती, लेकिन सरे बाजार, दिन के १०॥ बजे, पुलिस स्टेशन के पास, चौराहे के सिपाही से चार कदम पर, जब यह घटना घटती है तो बताइए आप क्या सोच सकते है ?

लेकिन आप जानते है कि कहने की बात और होती है और करने की और ! हाथी के दॉत खाने के और होते है और दिखाने के और ! हमने भी सोचा कि इस कोरी आदर्शवादिता मे क्या लोगे ? अगर यह १०॥ बजे वाली निकल गई तो दूसरी से ११॥ बजे दफ्तर लगोगे। ना बाबा ! हम भी लेकर बजरंगबली का नाम पिल पड़े और अपनी आदर्शवादिता को यह कहकर चुप कर दिया कि इस 'बस' पर जाने का पहला अधिकार हमारा है, हमे अपने अधिकारो की रक्षा खुद करनी चाहिए। और जो अपने अधिकारों की खुद रक्षा नहीं कर सकता वह कायर है !

हम दंगल मे कूद तो पड़े लेकिन जैसा कि गुसाईं तुलसीदासजी कह गये है :—

हानि-लाभ जीवन-मरन
जस-अपजस विधि हाथ।

इस 'महासमर' में विजयी होना कोई हमारे वश की बात थोड़े ही थी! अपनी पराजय पर हमें अफसोस तो कम न था, लेकिन तसल्ली इतनी जरूर थी कि इस मोर्चे से सफलतापूर्वक वापस हटने वाले अकेले हम ही न थे। हमारे साथ कई लम्बी मूछों वाले, ऊँचे पुट्ठों वाले, चौड़ी छाती वाले और टेढ़ी टोपी वाले भी थे। हमें तो सिर्फ गम इस बात का था कि आज ही जो नये धुले कपड़े निकाले थे उनका इस्तरी-कलफ लप-झप होगया, हाथ की घड़ी का शीशा चटक गया और वह तो भगवान ने खैर की, नहीं तो हमारा मनीबेग (हालांकि उसमें दस-बारह आने के ही पैसे थे) जाते-जाते बच गया!

आप शायद यह कहें कि यह तो सवारियों का कुसूर है कि वे लाइन लगाकर क्यों नहीं खड़ी होतीं? अगर क्यू (लाइन) में खड़े हों तो एक भी दिक्कत न उठानी पड़े।

जी हाँ, 'क्यू' की भी सुनिए। यह हिन्दुस्तान है भाई! यहाँ 'क्यू' का 'व्यू' जरा देर से समझ में आता है। फिर नियम कुछ भी हों, प्राथमिकता औरतों को ही दी जाती है। रेल में टिकट इन्हें अलग से दिया जाता है। डिब्बे इनके अलग और सुरक्षित होते है, 'बस' में इन्हें पहले स्थान मिलता है और आगे बैठाई जाती हैं। यह सब देखकर कभी-कभी यह सोचने को मजबूर होना ही पड़ता है कि हमने तो यह नर-देह यों ही धारण की! कम-से-कम 'बस' में स्थान पाने के लिए तो हमें पुरुष की देह की कतई आवश्यकता नहीं थी!

आज नई दिल्ली के बस-स्टैन्ड पर हम पाँच आदमी लाइन में आगे लगे थे, पर 'बस' के आने पर न जाने एक देवीजी कहाँ से आईं और हमारी घंटों से लगी लाइन को बेकार बनाती हुई ठाठ से 'बस' में सवार होगईं। यह पक्षपात 'बस' के बाहर तक ही सीमित हो, ऐसी बात नहीं; उसके अन्दर भी यह हाल है कि पुरुषों की भरी सीट पर [म]हिलाएँ आराम से बैठ सकती है, लेकिन महिलाओं की खाली सीट पर [...] और आप आसानी से नहीं टिक सकते। इन महिला कण्डक्टरों ने तो इधर और भी गजब ढा रखा है!

हर पहलू से सोचने-विचारने और भुगतने के बाद हम तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचे है कि भाई 'बस' की सवारी अपने बस की नहीं। यहाँ न यश मिलता है न रस मिलता है। और भरी कम्बख्त इतनी ठसाठस जाती है कि वह तो यह कहो कि हम गाँव से घी मँगाकर खाते है, नहीं तो जरूर ही गश आजाय !

लेकिन करे भी क्या ? इसे विज्ञान की तरक्की कह लीजिए या बिजली के आटे या वेजीटेबिल का पुण्यप्रताप समझ लीजिए कि जिसने धोती छोड़कर पाजामा या पैण्ट पहन लिया, या तक़दीर का मारा जो गाँव को छोड़कर शहर मे १०० रुपल्ली का भी बाबू होगया तो बस, चाहे चार कदम का ही फासला क्यों न हो, बिना 'बस' के साहब टस-से-मस नहीं हो सकते। अब काजीहौज से बारह खम्बा कोई दस पाँच मील है ? हमारे पूर्वज तो रोज सुबह-शाम इतनी दूर दिशा-मैदान को जाया करते थे, लेकिन एक हम है कि आध घन्टे 'बस' का तो इन्तजार कर लेगे लेकिन १० मिनट मे जहाँ आसानी से खरामा-खरामा खाना पचाते हुए पहुँचा जा सकता है, नही चल सकते !

. हर तरह से समझ-सोचकर हम तो यह देख चुके है कि मर्ज़ यह लाइलाज है। दिल्ली मे अगर रहना है तो 'बस' के बिना गुजारा नहीं हो सकता और, जैसा कि मैने कहा, 'बस' हमारे बस की बात नहीं है, देखिए भगवान ही इस गाड़ी को मुसीबत से पार लगायेगे !

दफ्तर की दुनिया....!

"गधे और घोड़े कैसे एक साथ जोते जाते हैं; बैल और भैंसे की जोडी कितनी प्यारी लगती है; एक ही पिंजड़े में कुत्ते, बिल्ली, चूहे और कबूतर कैसे साथ रखे जा सकते हैं, यदि यह देखना है तो आप हिन्दी का कोई अतुकान्त काव्य न पढ़कर मेरे साथ दफ्तर की दुनिया में आइए। जैसी असगतिया और चमत्कार आप यहाँ पाइएगा वैसी न जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों में मिलेंगी और न आज के छायावादी आलोचको की रचना में ही!"

दफ्तर की दुनिया....!

"गधे और घोड़े कैसे एक साथ जोते जाते है; बैल और भैंसे की जोडी कितनी प्यारी लगती है; एक ही पिंजड़े में कुत्ते, बिल्ली, चूहे और कबूतर कैसे साथ रखे जा सकते है, यदि यह देखना है तो आप हिन्दी का कोई अतुकान्त काव्य न पढ़कर मेरे साथ दफ्तर की दुनिया में आइए। जैसी असंगतियां और चमत्कार आप यहाँ पाइएगा वैसी न जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों में मिलेंगी और न आज के छायावादी आलोचको की रचना मे ही !"
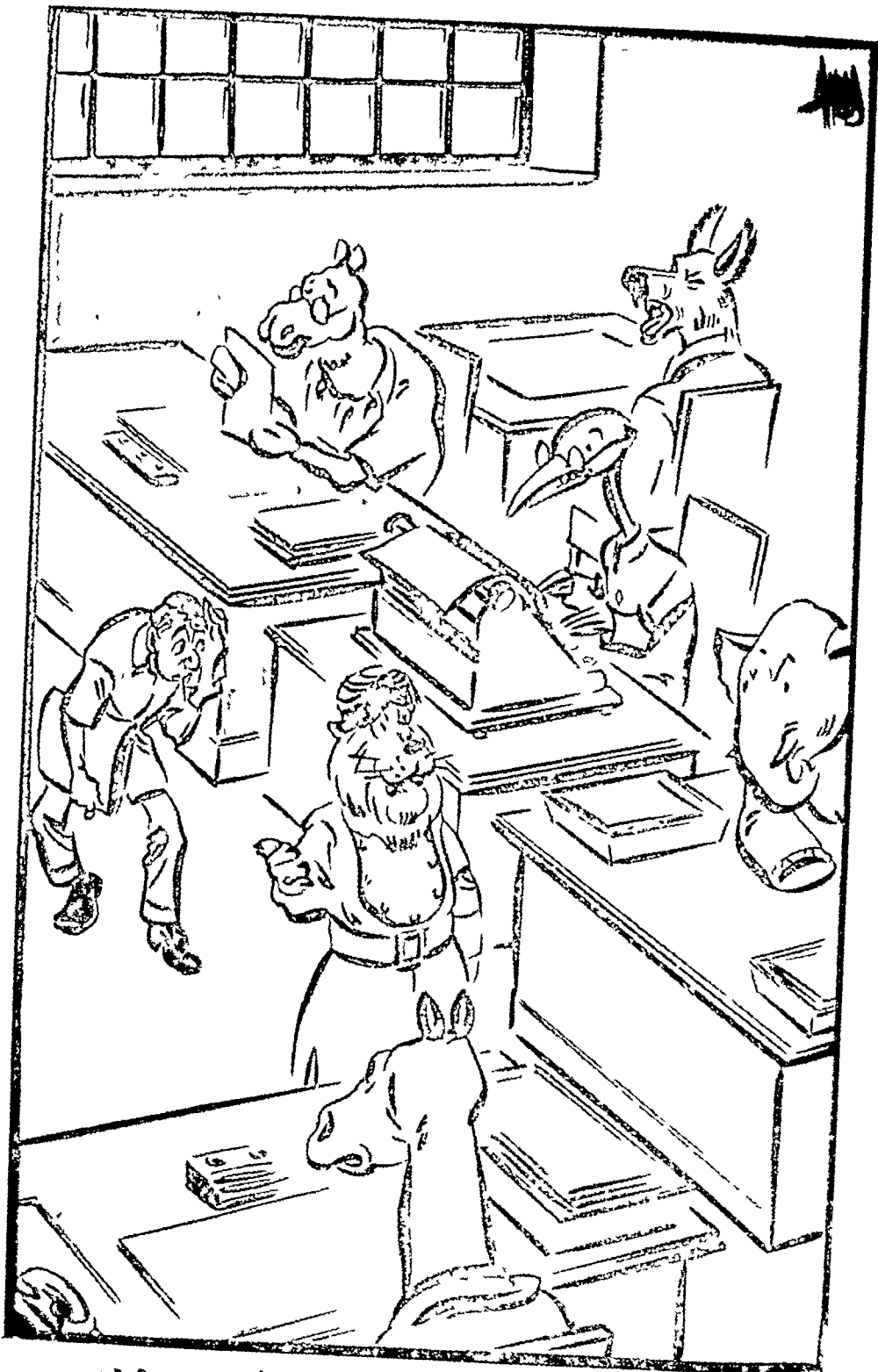
"कोई हाथी जैसा भारी-भरकम तो कोई बिल्कुल ऐसा जैसे
ास्तान का ऊंट ! कोई घोड़े जैसा चपल तो कोई टट्टू जैसा अड़ियल,
भेड़िए जैसा खूंखार तो कोई कुत्ते जैसा पालतू !

९

आपने लाख दक्षिण के मन्दिर और उत्तर के देवता देख डाले हों, हजार महल, मकबरे, किले, मीनार और अजायबघरों में आँख फाड़ी हों; कलकत्ते की चौरंगी, बम्बई की चौपाटी दिल्ली का चांदनी चौक और आगरे के ताजमहल पर चाहे आपकी आंखे फिसल-फिसल कर ही क्यों न रह गई हों, लेकिन अगर आपने एक बार भी कभी दफ्तर की दुनिया के दर्शन नहीं किये, तो समझ लीजिए कि आपका दुनिया देखना बेकार ही गया !

कहते हैं कि मनुष्यों की यह दुनिया विधाता की बुद्धि की उर्वर कल्पना है; सुनते है कि विश्वामित्र की महान् खोपड़ी ने भी बूढ़े वशिष्ट से उलझकर एक नई दुनिया बना डाली थी; दौलत की रोशनी मे अन्धे अमरीका को भी आजकल कुछ लोग नई दुनिया कहा करते हैं; कवि-लेखक और पत्रकारों को तो दुनिया निराली होती ही है—लेकिन यह जो हमारे हर शहर और कस्बे की छोटी-बड़ी इमारतों मे एक अजब ही दुनिया बसी हुई है, पता नहीं वह किस नये विश्वामित्र की छायावादी बहक का परिणाम है कि उसने सारी दुनिया पर और उस के विधि-विधान पर पानी फेर रखा है !

वेद, उपनिषद् और धर्मशास्त्रों मे लाखों-करोड़ों वर्ष के प्रयत्न से जिस परम तत्व आत्मा का सूक्ष्म अनुसंधान किया गया, और जिसके लिए ऋषि, मुनि, योगी जी-जीकर मरे और मर-मर कर जिये; उसे यहां के छोटे-छोटे क्लर्कों ने तारों में, फाइलों मे, रजिस्टरों और आलमारियों मे ऐसे सम्हालकर बन्द कर रखा है कि आत्मा क्या

परमात्मा भी आजाय तो पड़ा तड़पता रहे और लाल फीते से बेचारे का उद्धार ही न हो !

बड़ी-बड़ी शाश्वत भावनाएं, रस, छन्द और अलंकार जिनके लिए महाकवि लोग मगजपच्ची करते-करते मर गये यहां हजारों और लाखों की तादाद में 'पिन' और 'टैग' किये हुए पड़े हैं। आजकल के कहानी, उपन्यास और नाटक लिखने वालों को चाहे रात-रात-भर जागते रहने के बाद भी कथानक और पात्र न मिलते हों पर यहाँ पग-पग पर कथानक और कदम-कदम पर पात्रों और कुपात्रों की वह भीड़ भरी है कि बिना पढ़े ही प्रेमचन्द के उपन्यासों का मजा आ जाता है !

जी हां, जहां के लोग औरतों की तरह लड़ें, जहां के बूढ़े बच्चों की तरह टुसकने लगें, जहां के मूर्ख पंडितों को मात दें और जहां के दुष्ट देवताओं की तरह सिंहासन पर बैठकर उन्हींकी तरह ईर्ष्या और द्वेष में पारङ्गत हों, तो बताइए, आप इनमें दिलचस्पी लेंगे या इलाचन्द्र जोशी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से सिर फोड़ेंगे ?

बताइए गर्मियों में गुलूबन्द लगाये, पैन्ट पर बन्द गले का कोट डाटे, बुशशर्ट के नीचे धोती पहने या कुर्ते पर हैट और आंखों में मोटा-मोटा काजल लगाये देशी बाबुओं की त्रिभुवन-मन-मोहनी सौन्दर्य छटा का अवलोकन करेंगे या बेढब, बेधड़क, बेसड़क, बेगरज बेमरज, बेहरम, बेशरम आदि महाकवियों की रस से चुहचुहाती रचनाएं सुनना पसन्द करेंगे ?

गधे और घोड़े कैसे एक-साथ जोते जाते हैं ? बैल और भैंसे की जोड़ी कितनी प्यारी लगती है ? कुत्ते, बिल्ली, चूहे और कबूतर एक साथ कैसे रखे जा सकते हैं—यदि यह देखना है तो आप हिन्दी का कोई छायावादी महाकाव्य न पढ़कर मेरे साथ दफ्तर में आइए, जैसी असंगतियां आपको यहां मिलेंगी वैसी जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासों में भी ढूँढ़ने से न पाइएगा !

हिन्दुस्तान और उसकी समस्याओं को देखना-समझना है तो नाहक गांधी, नेहरू की पुस्तकों में सर खपाते हो ? दफ्तर को देखिए—ैसे भगवान ने अर्बों-खर्बों मनुष्य पृथ्वी पर पैदा किये हैं, मगर क्या

मजाल कि लाख घूँघट वाली अंधेरे में भी अपने पति को पहचानने में गलती कर बैठे—सब सूरत, स्वभाव और व्यवहार मे एक दूसरे से अलग ! ठीक वैसे ही दफ्तर की दुनिया मे दस-बीस नहीं, सैंकड़ों-हज़ारों आदमी एक जैसा काम करते है, एक जगह उठते-बैठते है, एक-सा वेतन पाते है, एक-से क्वार्टरों में भी रहते है, मगर क्या मजाल कि वे किसी एक भी बात पर एकमत हो सकें ! कहीं भी उनमे एका हो—सब एक-दूसरे से निराले और अजीब ! कहिए यही असली हिन्दुस्तान है न ?

कोई हाथी जैसा भारी-भरकम तो कोई बिल्कुल ऐसा जैसा रेगिस्तान का ऊँट ! कोई घोड़े-जैसा चपल तो कोई टट्टू जैसा अड़ियल ! कोई भेड़िये-जैसा खूंखार तो कोई कुत्ते-जैसा पालतू ! कोई बैल की तरह जुतने वाला तो कोई बिलाई की तरह मलाई साफ करने वाला ! कोई चपरासी की खाल मे शेर तो कोई अफसर की खाल में गधा ! कोई छैला तो कोई मटमैला ! कोई चुप्प तो कोई वाचाल ! गरज यह कि विधाता ने अपनी फैक्टरी मे आदमी की जाति के जितने मॉडल तैयार किये है, दफ्तर के अजायबघर में उन सबके नमूने आपको तैयार मिलेंगे !

लेकिन कहने का मतलब यह नहीं कि दफ्तरी लोग हर बात मे एक-दूसरे से पृथक ही है। कुछ बाते उनमे असाधारण रूप से सामान्य भी है, जैसे सब हैड क्लर्कों से डरते है, आफिसरों से कॉपते है, गालियों का गिला नहीं मानते और खुशामद करने मे २५) के चपरासी से लेकर २५००) तक के सेक्रेटरी तक समान रूप से सनद प्राप्त किये हुए है। यह ठीक है कि सुपरिन्टेन्डेन्ट या मैनेजर के मारे उनकी धोती ढीली होने लगती है और पैन्ट खिसकने लगता है, मगर दफ्तर मे, उनकी कुर्सी के सामने, काम पड़ने पर अदना-से-अदना क्लर्क क्यो न हो, जरा आप खड़े होकर तो देखिए, आपके होश ढीले न करदे तो नाम नहीं ! और क्यों न करदे ? आप लाख सभाएं कीजिए, प्रस्ताव पास करिए, जलूस निकालिए, सरकार पर जोर डालिए, वह जानते है कि राज की कुंजी आज नेहरू के हाथ मे नहीं उनकी कलम की नौक मे है ! यह ठीक है कि घर मे बीबी के मारे

और बाजार में साहूकारों के मारे उसका रहना-निकलना दूभर हो रहा है, मगर यह उसकी घरेलू बातें है, इनमें दखल देने का आपको कोई हक नही, हाँ, बाहर अगर पैन्ट की क्रीज ढीली हों, शेव न बनी हो, बाल रूखे हों, जूते न चमकते हों तो आप शिकायत कर सकते हैं? शनि-वार को अगर सिनेमा न जाये, रविवार की शाम का भोजन बाहर न करे, १५ तारीख से पहले ही तनख्वाह समाप्त न होजाये तब आप चाहे तो यह सोच सकते है कि बाबू अपने धर्म से डिग गया, नहीं तो वह सत्य सनातन धर्म का अबाध रूप से पालन करता रहता है।

दुनिया मे बार-बार युद्ध क्यों होते है यह मेरी समझ में नहीं आता। इसे रोकने के लिए व्यर्थ ही करोड़ों डालर यू० एन० ओ० पर खर्च किये जारहे है। दुनिया को सहनशीलता और समन्वय का पाठ आज बी० एन० राव की स्पीच से नहीं, दफ्तर के वातावरण से लेना चाहिए। यहाँ गांधी के शिष्य, लेनिन के नाती, चर्चिल के पिट्ठू और गुरूजी के शिष्य एक ही कमरे में आठ घण्टे रहते हैं, मगर कैसी क्रांति, उनमे कभी हाथापाई की भी नौबत नहीं आती। यह नहीं कि वे चुप रहते हों, या बहस न करते हों, अथवा कोई किसी की बात मानने को तैयार हो जाते हों, लेकिन वे बहस के लिए बहस करते है, इसलिए बहस करते है कि बहस करना फैशन और बड़प्पन की निशानी है!

आपने कभी शालिग्राम की बटिया के दर्शन किये हैं?—गोल, सुचिक्कण और नयनानन्द से परिपूर्ण! तो बस, दफ्तर के बाबू को भी आप एकदम सालिग्रामजी की बटिया ही समझिए। वैसा ही कोने, किनारों से हीन, गोल-सिलपट! वैसा ही चिकना, जिस पर नाम को पानी नहीं ठहरता! वैसा ही देवता, जिसे भूख सताती है न प्यास! वैसा ही पत्थर कि संसार मे कुछ भी होता रहे उसके कानों पर जूं नहीं रेंगती। वह भला और उसका कुर्सी रूपी सिंहासन भला! घड़ी ने उठाया, उठा। बीबी ने दे दिया, खा लिया! काम मिला, कर दिया। न मिला, बैठा रहा। डाट लगादी, कांपने लगा। निकाल दिया तो रो पड़ा। साहब की सीधी नजरें हुईं तो फूल गया। बीबी ने जरा हँस कर देख लिया तो गा उठा—

अँखियाँ मिलाके, जिया भरमाके, चले नहीं जाना, हो!

हे हिन्दी के आलोचको....!

"तुमने आलोचना लिखने के लिए वे जो सौ-पचास शब्द अपनी डायरी में नोट कर मेज पर रख छोड़े है, मैं चाहता हूँ कि तुम उन सबका एक बार ही मेरी पुस्तक पर प्रयोग कर बैठो!"

"हे हिन्दी के आलोचको, आओ, मैं तुम्हे रास्ता बताता हूं!"

मैं हास-परिहास की कविताएँ अच्छी लिखने लगा। अच्छी ही नहीं, बहुत अच्छी लिखने लगा हूँ। इसके प्रमाण में मै आपको सम्पादकों के पत्र, कवि-सम्मेलनों के निमन्त्रण और छपी हुई कविताओं के वे सब कटिंग जो मैंने सम्हालकर एक रजिस्टर में चिपका लिये है, जब चाहें तब दिखा सकता हूँ।

मेरी सफलता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि कविता बिना सुने ही लोग मेरी शक्ल पर हँसते हैं, सुनने के बाद ताली पीटते है और बाहर निकलते ही उँगली उठाते है!

इसीलिए ही कभी-कभी जब सुप्रसिद्ध हिन्दी इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के असामयिक निधन पर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे बडी निराशा हो आती है!

हाय! अब शुक्लजी के बिना कौन मेरे स्थान को हिन्दी में स्पष्ट कर सकेगा?

तब, ऐ हिन्दी के नवीन इतिहास लेखको! विधाता की इस भूल को, जो उसने असमय शुक्लजी को उठाकर की है, अपने इस उत्तर-दायित्व को, जो असमय तुम्हारी कलम पर आपड़ा है, क्या तुम निबाह सकने मे समर्थ हो सकोगे?

बुद्धिमानी इसीमें है कि तुम इस अवसर से लाभ उठाओ। तुम्हारी लेखनी मेरे विषय मे लिखते हुए धन्य हो उठे। तुम लिखो कि "व्यासजी जैसी अमर शक्तियाँ साहित्य के इतिहास मे कभी-कभी ही उदित होती हैं, और हिन्दी के इतिहास मे तो इने-गिने दो-चार

ही व्यक्ति हैं, जिनका नाम श्रद्धेय व्यासजी के साथ लिया जा सकता है। इस छोटी-सी उम्र में ही उनकी कलम ने जो जौहर दिखाए हैं, ऐसे उदाहरण हमें तो हिन्दी-साहित्य मे देखने को नहीं मिले।"

कोई भले कहे कि शुक्लजी नवीन लेखकों के यशगान में बडे ही कृपण थे, पर आज कहीं वह होते, और मुझे देख पाते, तो विश्वास मानिए कि वे मेरे अन्तर को खोलकर रख देते और लिखते कि "व्यासजी की कविताओं मे हमें शिष्ट हास्य की सुन्दर झाँकी मिली। उन्होंने अपरूप वस्तुओं में से हास्य की उद्भावना न कर जीवन की हास्योन्मुखी वृत्ति का उद्घाटन किया है। क्रोचे के अभिव्यंजनावाद में छायावाद (इम्प्रेशनिज्म) का पुट देकर सामयिक लहरियों से उच्छ‌लित व्यासजी की हास्य-सृष्टि अपूर्व हो उठी है।"

पर शोक ! वह रत्नपारखी न रहे ! तब—

ए नये युग के उदार समालोचको ! तुम अब यह लिखो कि "व्यासजी ने हिन्दी के सारे परिहास लेखकों को १०० कदम क्या १००० मील पीछे छोड़ दिया है। उर्दू के अकबर होते तो दाँतों तले अँगुली दबा जाते। 'हास्यरस' के चुटकुले कहना और बात है, उक्तियों मे स्वय वैदग्ध्य होता है, पर हास्य को विषय और वस्तुओं मे बाँधना टेढ़ा कार्य है। व्यासजी ने इस महत्वपूर्ण कार्य को अपने हाथ में लेकर हम लोगों के मस्तक को ऊँचा उठाया है, वे सूर की तरह सरस, तुलसी की तरह व्यापक और बिहारी की तरह प्रिय रहेगे।"

और ए मेरे आलोचक दोस्तो ! तुम्हारी मित्रता यदि आज के दिन काम नहीं आई तो वह फिर किस दिन काम आयेगी ? अपनी पुस्तक की पहली प्रति मैं तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। तुम हिन्दी के पत्रों मे वह तूफान बरपा करदो कि कहर मच जाय ! मेरी कविता मे जो गुण नहीं है उन्हे खोज निकालो। पाठक जो सोच न सकें वह लिख डालो। हे हिन्दी के आलोचको, आओ ! मै तुम्हें रास्ता बताता हूँ। तुमने आलोचना लिखने के लिए वे जो सौ-पचास शब्द अपनी डायरी मे नोटकर मेज पर रख छोड़े हैं, मैं चाहता हूँ कि तुम उन सब का एकबार ही मेरी पुस्तक पर प्रयोग कर बैठो। तुम लिखो—

"व्यासजी अंग्रेजी के यह हैं, फ्रैंच के वह। रूस का अमुक लेखक भाषा-सौष्ठव मे व्यासजी से यों पीछे रह जाता है और अमरीकी लेखक अपनी अश्लीलता के कारण हमारे व्यासजी का पल्ला यों नहीं पकड़ सकते।" यही नहीं, तुम यह भी लिखो कि "इधर पच्चीस बरस से हिन्दी मे ऐसी दिलचस्प कोई दूसरी पुस्तक नही निकली, हम प्रत्येक हिन्दी पाठक का ध्यान इस पुस्तक की ओर आकृष्ट करना चाहते है।"

आप क्या हिन्दी के पाठकों की आदत से परिचित नहीं कि वे किसी भले आदमी की कदर नही करते। अरे न करें! यदि हम आपस मे संगठित है तो पाठक हमारा कर ही क्या सकेंगे? आप मेरी कद्र कीजिए मैं आपकी दाद दूँगा। मै कवि ही नहीं आलोचक भी हूँ। आप मेरी प्रशंसा कीजिए, मै आपकी तारीफ के पुल बाँध दूँगा। यदि आप कवि है तो व्यास और वाल्मीकि से बढ़ा दूँगा। यदि आप इतिहासकार हैं तो विंसेन्ट स्मिथ से भी ऊँचा उठा दूँगा। यदि आप विचारक है तो वर्नार्डशा और विनोबा से भी दस हजार मील (आजकल के वायुयानी युग मे कदम क्या चीज है) आगे बढ़ा दूँगा—'मनतुरा काजी विगोयम तो मरा हाजी विगो'।

मित्रो! मैं चाहता हूँ तुममे से कुछ जान-बूझकर मेरे विरुद्ध लिखना शुरु करदे। क्योंकि मुझे वताया गया है कि यह विरुद्ध आलोचनाएँ प्रचार मे वड़ी सहायक होती है। तो, हां बनारसीदासजी चतुर्वेदी, एक आन्दोलन मेरे नाम पर भी सही! भाई रामविलास, मैं प्रगतिवादी नहीं हूँ—एक तमाचा मेरे गाल पर भी! मेरी कविता के छन्द-अलकार, वाजपेयीजी तुम कहाँ हो, तुम्हे पुकार रहे है! मैं कनवजिया नहीं हूँ, मेरे पूर्वी मित्रो! तुम कहाँ सो रहे हो? तुम लिखते क्यों नहीं कि—"जिसे देखो आज वही कवि बनने जारहा है। हास्य लिखना तो लोगों ने खिलौना समझ रक्खा है। अभी व्यास नाम के महाशय की एक पुस्तक देखने को मिली। स्वयं लेखक तो अपने आपको न जाने क्या समझे बैठा है, पर असल मे ऐसे सस्ते हास्य का नमूना हमें तो अन्यत्र दिखाई नहीं दिया। जनाब को पत्नी के सिवाय दूसरी

चीजों में हास्य ही नहीं फुरता। कविताओं का टेकनीक एकदम पुराना है और विचार हजरत के १६वीं शताब्दी के। नारी को गलत चित्रित किया गया है। नारी को बदनाम करने की मिस मेयो जैसी प्रवृत्ति भी इस पुस्तक में दिखाई पड़ती है। ऐसा लगता है कि मिस्टर व्यास की अपनी विकृत भावना ही पत्नी के चित्रों में मुखर हो उठी है। अधिकांश कविताओं को पढ़कर लगा कि यह भारतीय घर का चित्र नहीं, स्वयं लेखक के घर का पहलू है। इन कविताओं में शैली की एकतानता है। सुरुचि, शिष्टता और सामाजिकता की अवहेलना की गई है। अधिकांश कविताएँ अश्लील हैं। अभी पाश्चात्य देशों के मुकाबले हमारा हिन्दी का साहित्य कितना तुच्छ और नगण्य है कि उसकी तुलना नहीं की जा सकती। व्यासजी अगर अँगरेजी नहीं जानते तो उन्हें अपने पड़ौसी बंगाली, मराठी के साहित्य को ही देख जाना चाहिए। तब उन्हें अपना स्थान ठीक दिखाई दे जायगा कि जिनके पासङ्ग में उनकी रचनाएँ कितनी फूहड़, बोदी और वेतुकी है।"

इसके बाद तुम मेरी किसी एक बोदी-सी कविता को लो और उसमें जगह-जगह मिलने वाले छन्द-भङ्ग, पुनरावृत्ति, ग्राम्यप्रयोग और अश्लीलता का पर्दाफाश कर डालो। पुस्तक के गैट-अप, कागज और मूल्य पर भी तुम्हारी टिप्पणी रहनी चाहिए। प्रेस की अशुद्धियों को बचा जाना सही आलोचना नहीं है। और देखो, चलते-चलते मेरे प्रकाशक पर भी अपनी स्याही की दो बूँदे ऐसी छिड़कना कि अगली पुस्तक छापने से पहले उसे दस बार सोचना पड़ जाय। मतलब यह कि मेरी कविता को इस प्रकार से तुम्हें दो कौड़ी की सिद्ध करके ही दम लेना है, समझ गये न ?

यह मेरी पहली पुस्तक है। मुझ पर बड़ी-बड़ी किताबें तो बाद में लिखी जायँगी, पर छोटी किताबे यदि अभी निकल जायें तो कोई हर्ज न होगा। मतलब मेरा कहने का यह है कि यदि "व्यास की कला" (गुप्तजी की कला) "व्यास : एक अध्ययन" (साकेत : एक अध्ययन) जैसी किताबे अभी नहीं लिखी जा सके, तो भाई प्रभाकर माचवे, तुम जल्दी-से-जल्दी दिल्ली चले आओ। मैं आजकल दिल्ली ही हूँ। मुझसे आकर दो-चार 'इन्टरव्यू' ले लो और जल्दी ही "व्यास के विचार"

(जैनेन्द्र के विचार) नाम से एक पुस्तक तैयार करदो। छपवाने का प्रवन्ध सब हो जायगा।

और पाठको, ऐ माँगकर पुस्तक पढ़ने वाले शौकीनो, ओ पुस्तकालय मे नवीन पुस्तकों की वाट देखने वाले प्रेमियो—कुछ कद्र करना सीखो! तुम्हारा शरीर अपना नही वह राष्ट्र का है, और हम राष्ट्र का निर्माण करने वाले साहित्यिक है। तुम्हारा मन अपना नहीं वह किसी और का है, और उस 'किसी और' की स्थापना तुम्हारे मन मे हमने ही तो की है! तुम्हारा धन अपना नहीं वह गरीबों का है, और हम हिन्दी के गरीव लेखक है। तुम्हारा ज्ञान अपना नहीं, वह हमसे उधार लिया गया है। आज हम इस सवकी एवज चाहते है। सवकी ओर से मैं चाहता हूँ। तुम्हे यह कर्जा चुकाना ही होगा। मेरी पुस्तक खरीदनी ही होगी।

न केवल तुम किताव ही खरीदोगे, मेरी भूख कुछ और भी वढ़ी हुई है। मैं यश का भूखा हूँ—मुझे कवि-सम्मेलनों का सभापति वनाओगे। मै धन का भूखा हूँ—तुम मुझे लिफाफों मे चैक भेजोगे। मुझे जिन्दा रहने के लिए सोसाइटी चाहिए, कविता लिखने के लिए रङ्गीनी चाहिए, वोलो, दे सकोगे?

वाहरे कवि के स्वप्न! और उसकी कविता की फजीहत! और उसका ऊपर तैर आने वाला अहंकार! और व्यंग रूप में उसकी अपनी ही आत्म-प्रशंसा!

खुशामद भी एक कला है....!

"खुशामद अनादि है, अनत है। आत्मा चाहे जर और मर हो, लेकिन लाख क्रांतियॉ हों, हजार निजाम बदलें, खुशामद अजर और अमर है. सनातन और निर्विकल्प है। देश और काल उसमें बाधा नहीं डालते। जैसे जीवन के साथ मरण जुड़ा हुआ है, उसी प्रकार मनुष्य के साथ खुशामद जुडी हुई है। दूध में से पानी अलग किया जा सकता हो, नदियो की रेत मे से चॉदी छानकर निकाली जा सकती हो, लेकिन, मनुष्य से खुशामद नही छूट सकती।"

"मजाक नहीं, खुशामद करना भी एक कला है!"

११

मज़ाक नहीं, खुशामद करना भी एक कला है। और कमबख्त, ऐसी कला है कि सारी दुनिया इसमें माहिर होना चाहती है, लेकिन बदकिस्मती भी ऐसी है कि नाचने-गाने और भगवान जाने झूठ या सच, किसी-किसी सभ्य देश में तो चोरी सिखाने तक के स्कूल-कालेज खुल गये है, पर खुशामद जैसे खुशनुमा और दिन-रात व्यवहार मे आने वाले परम उपयोगी 'आर्ट' पर न तो कहीं कोई डिग्री कालेज है और न किसी यूनिवर्सिटी मे इस विषय पर 'थीसिस' ही स्वीकार की जाती है। इसका फल यह होता है कि योगियों के लिए भी परम दुर्लभ इस गहन तत्व का विधिवत अध्ययन नहीं होपाता और इस विद्या का जैसा शास्त्रोक्त और सुसंस्कृत प्रचार होना चाहिए वैसा नहीं होरहा।

अभी तो हाल यह है कि आदमी की अक्ल ने अपने-अपने अलग-अलग छुरी-कॉंटे बना रखे हैं कि सेक-सेककर टोस्ट पर मक्खन लगाया जारहा है, अपने-अपने जाल और कॉंटे हैं कि परन्दे फँस रहे हैं, मछलियॉं अटक रही है; अपना-अपना मांजा और करिश्मा है कि पतगे बढाई जारही हैं और पेच-पर-पेच उलझा दिये गये हैं और इस तरह अपनी-अपनी किश्तियॉं है कि धार मे छोड़ दी गई है कि किनारे लग जायॅं तो राम मालिक और डूब मरें तो मर्जी भगवान की !

भाई मेरे, पिताजी की फालतू कमाई पर गोते खा-खाकर बी० ए० एम० ए० होजाना और बात है और जीवन मे बिना कौड़ी-पैसे के सफलता लाभ करना अलग बात है। आपने चाहे छब्बीस वर्ष तक जबरन ब्रह्मचर्य पालन करके जैसे-तैसे विद्यालंकारिता भले ही

हासिल करली हो, लेकिन जब तक खुशामद का 'कोर्स' लेकर आपको 'तिकड़म' की सनद नहीं मिलती, तब तक किसी अखबार की सम्पादकी तो क्या, श्रीमानजी, आपको कहीं चपरासीगीरी भी नहीं मिल सकती !

जी हाँ, चपरासीगीरी ! विश्वास न हो तो अपने शहर में जो म्युनिसिपल कमेटी है, उसके सक्के से लेकर सैक्रेटरी तक से एकान्त में जरा पूछ लीजिए कि हुजूर, जो-कुछ आज आप दिखाई देते हैं, वह सब किसकी बदौलत है ? हर एक ईमानदार आदमी आपसे यही कहेगा कि अजी, हम किस काबिल हैं, यह तो महामहिमामयी, परम भगवती, खुशामद देवी का ही परम प्रसाद है !

यही क्यों, आप किसी भी दफ्तर के मैनेजर क्या हैड क्लर्क तक के हाथ पर गंगाजली रखकर ईमान से पूछ लीजिए कि महाराज, हम किसीसे भी जिक्र नहीं करेंगे, न अखबारों मे ही छपने देंगे, पर कृपाकर यह तो बताइए कि जिस कुर्सी पर आज हमें बैठना चाहिए था, वहाँ आप कैसे विराजमान हैं ? वह क्या उत्तर देंगे यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन इतना अवश्य बतादूं कि जितने भी ये बड़े-बड़े जज, कलेक्टर, तहसीलदार और थानेदार है, इन सबकी नींद मे कहीं-न-कहीं खुशामद का पानी अवश्य पड़ा हुआ है !

और क्यों न हो, खुशामद कोई आज की या अनहोनी चीज तो है नहीं। हम सबका सिरजनहार, अखिल विश्व का नियन्ता, खुद परमेश्वर ही जब महा खुशामदपसन्द है तो इस धरती के तुच्छ मनुष्य की क्या चलाई ! वेद-शास्त्र, पुरान-कुरान. गीता-बाइबिल सब एक स्वर से कहते है कि उसकी प्रार्थना करो, उससे दुआएं मांगो, उसके सामने नाक रगड़ो, अपने को तुच्छ समझो, उसे सर्व शक्तिमान कहो। यही नहीं, उनका यह भी कहना है कि आप लाख पापी हों लेकिन सारे जीवन में यदि एक बार भी आपकी खुशामद-भरी टेर उस तक पहुंच जाय, तो बस, फिर जनम-जनम के पाप स्वयं ही कट जाते है। अजामिल, गीध, व्याध, गणिका और गजराज की अमर कथाएँ, हजार मुख से खुशामद की ही महान शक्ति का जयघोष कर रही है।

सतयुग, त्रेता और द्वापर का तो पता नहीं, पर इस कलि-काल में और खास तौर से इस बीसवीं शताब्दी में तो आप जानते हैं कि आज तक किसीने ईश्वर को देखा नहीं। फिर भी हम उसे सर्वत्र व्याप्त कहते है। सब जानते हैं कि रोटी ८ घंटे की कड़ी मेहनत और गृहलक्ष्मी की कृपा से प्राप्त होती है, कपड़ा मिलों मे बनता है और जेल के सर्टीफिकेट द्वारा परमिटों से प्राप्त होता है, मकान पगड़ी देने पर खुला करते है और नौकरी खुशामद से और रोजगार बेईमानी से फलते-फूलते है, फिर भी हम सब यही कहते हैं कि यह सब कुछ उसीका दिया हुआ है। सब कुछ उसीकी कृपा है।

मरने के बाद सिवाय नचिकेता के आजतक कोई उस दुनिया से नहीं लौटा। आजकल के वैज्ञानिक चाहे मनुष्य को १० लाख वर्ष पुराना ही माने, हमारे नचिकेता को हुए करोड़ों वर्ष बीत गये होंगे। इस बीच उस दुनिया मे क्या उलट-फेर हुए यह पता नहीं लग पाया। पता नहीं, यमराज की हिटलरशाही अब भी वैसी चल रही है या मित्रराष्ट्रों ने उसका खात्मा कर दिया है। क्या पता नरकवासियों ने भी सन् ४२ मे विद्रोह कर दिया हो, और वहाँ भी अब प्रजातन्त्र की स्थापना होचुकी हो ? यह भी तो सम्भव है कि स्वर्ग में इन्द्र के अपार वैभव और असमानता को देखकर देवताओं में भी साम्यवाद के बीज फूट पड़े हों ? या ईश्वर की अखड सत्ता भी अब भारतीय नरेशों की भांति वैधानिक ही रह गई हो तो ? लेकिन हम यह सब कुछ नहीं सोचते और खुशामद के शुद्ध सनातन धर्म को आंख मूंदकर भक्तिपूर्वक निवाहे जाते हैं !

कहने का मतलब यह कि खुशामद अनादि है, अनंत है। आत्मा चाहे जर और मर हो, लेकिन लाख क्रांतियाँ हों, हजार निज़ाम बदलें, खुशामद अजर और अमर है। सनातन और निर्विकल्प है। देश और काल उसमे बाधा नहीं डालते। जैसे जीवन के साथ मरण जुड़ा हुआ है, उसी प्रकार मनुष्य के साथ खुशामद जुड़ी हुई है। दूध में से पानी को अलग किया जा सकता हो, नदियों की रेत से चांदी छानकर निकाली जा सकती हो, लेकिन मनुष्य से खुशामद नहीं छूट सकता। वह ईश्वर की नहीं करेगा, प्रकृति की करेगा। बादशाहों को छोड़ देगा, मिनिस्टरों

की करेगा, उनसे काम नहीं निकलेगा आफीसरों की करेगा। जरूरत होगी तो पूँजीवाद की दुहाई देगा और जरूरत न होगी तो स्टालिन को सलाम पहुँचवा देगा।

तो फिर जब खुशामद है, रही है और रहेगी, तो फिर क्यों न उसे खुलकर गले लगाया जाय ? फिर क्यों हिचका जाय और तकलीफें सही जायं ? ऐ दुनिया के सन्त्रस्त प्राणियो ! मैं तो कहता हूँ कि विद्या चूक जाय, बल रखा रहे, धन बेकार होजाय, रूप का भी जादू न चले और चाहे बुद्धि भी साथ न दे, लेकिन याद रखो, मौके पर आज तक खुशामद ने कभी दगा नही दी। जहाँ सब फेल होते हैं वहाँ ब्रह्मास्त्र (अब तो 'एटम' कहूँ तो ठीक होगा) की तरह अकेली खुशामद ही सफल होती है।

अगर आप खुशामद करना जानते है तो कोई परवाह नहीं कि आपके पास डिग्रियाँ है या नही, आप योग्य है या अयोग्य—नौकरी आप को ही मिलेगी। आप शकल से लाख शेखचिल्ली हों और आप की जेबों में चाहे सूराख ही होरहे हों, लेकिन खुशामद के शस्त्र से प्रेम के पंथ मे आप बड़े-से-बड़े स्वरूपवान और लखपती को पछाड़ सकते है !

दूर क्यों जाते है, खुद मेरी खुशामदी सफलताओं का ब्यौरा सुनिए न ? कभी हम साहब कुल १०) महीने के कम्पोजीटर थे। १५ साल बाद इस तेजी के जमाने मे बहुत होता तो ५०) होगये होते। लेकिन हाथ मे 'स्टिक' पकड़ते-पकड़ते ठेके पड़ गई होती, स्टूल पर बैठते-बैठते कमर कमान होगई होती, 'करेक्शन' करते-करते कटाक्ष कोटरलीन होगये होते और बहुत मुमकिन था कि शीशे की गर्मी श्वास-प्रश्वास द्वारा फैफड़ो तक पहुँच गई होती और अब तक हमे हमारे बिरादरीवालों ने 'सत्यधाम' भी पहुँचा दिया होता। लेकिन वह तो यह कहिए कि तकदीर हमारी कुछ अच्छी थी जो शीघ्र ही हमने खुशामद के महत्व और महात्म्य को हृदयंगम कर लिया, उस्तादों की चिलम भर-भरकर हजारों नई-पुरानी कविताएं याद कर डालीं और पचासों जगह उन्हे अपनी बताकर सुना डाला, तिकड़म से नकल कर-करके विशारद और साहित्यरत्न पास कर लिये, कवियों की खुशा-

मद करके कुछ तुकें जोड़ना सीख लिया, महान कवियों और लेखकों की नई-पुरानी कृतियों पर प्रशंसात्मक लेख लिखे, खुशामद कर-करके इन्हें पत्रों मे छपवाया और इस तरह क्रम-क्रम से साधना करने पर आज यह दिन भी आया कि लोग भूल गये कि हम पहले क्या थे ? अब तो हम है महामहिम स्वनाम धन्य श्री......कवि, लेखक और पत्रकार !

तो भाई मेरे, इसीलिए कहता हूं कि खुशामद से भागो मत ! इस दुनिया मे सब कुछ असत्य है। सत्य केवल दो वस्तुएं है, वह यह कि अगर नालायक हो तो खुशामद करो। और लायक हो तो खुशामद कराओ। संसार और सफलता का रहस्य बस इसीमे छिपा है !

इतनी भूमिका और खुशामद के इस महामहिमामय माहात्म्य के बाद आप शायद इस कला के कुछ तौर-तरीके अवश्य जानना पसन्द करेंगे। यों तो यह विषय योगियों के लिए भी दुर्लभ और तपस्वियो के लिए भी परम गहन है, पर क्योंकि अपनी पत्नी के पुण्य प्रताप से मैंने इसमे यत्किंचित सिद्धि लाभ की है, इसलिए, अपने चौथाई शताब्दी के कुछ अनुभूत प्रयोग आपकी सुविधा के लिए यहां देरहा हूँ। आशा है मेरे इस परमार्थ से पाठकों का स्वार्थ अवश्य ही साधन हो सकेगा।

खुशामद की कला मे सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण बात यह है कि आप खुशामद तो करे, लेकिन खुशामदी न समझे जाये। यानी, जिसकी खुशामद आप करना चाहते है उसे यह न मालूम हो कि मेरी खुशामद की जारही है।

आप मे से शायद कुछ मेरी इस बात से सहमत न हों और कहें कि जब परमात्मा सीधी प्रशंसा यानी खुशामद से खुश होता है तो जीवात्मा क्यों नही होगा ? दुनिया में ऐसा कौन है जिसे अपनी खुशामद खुद अच्छी नही लगती हो। लेकिन मैं कहता हूँ कि ये "टेकनीक" अब पुराना होगया, घिस गया और आज के खुशामद-पसन्द इससे भली-भांति परिचित होगये है। अब हर समय, जी हुजूर, हॉ हजूर, बहुत ठीक, वाह-वाह, क्या कहने है आदि पर रीझने वाले निरक्षर राजा-रईस, नवाब, शौकीन सब या तो परमधाम पहुँच गये या वहॉ की बाट जोह रहे है ! आजकल के हम खुशामदियों

की करेगा, उनसे काम नहीं निकलेगा आफीसरों की करेगा। जरूरत होगी तो पूँजीवाद की दुहाई देगा और जरूरत न होगी तो स्टालिन को सलाम पहुँचवा देगा।

तो फिर जब खुशामद है, रही है और रहेगी, तो फिर क्यों न उसे खुलकर गले लगाया जाय ? फिर क्यों हिचका जाय और तकलीफें सही जायं ? ऐ दुनिया के संत्रस्त प्राणियो ! मैं तो कहता हूँ कि विद्या चूक जाय, बल रखा रहे, धन बेकार होजाय, रूप का भी जादू न चले और चाहे बुद्धि भी साथ न दे, लेकिन याद रखो, मौके पर आज तक खुशामद ने कभी दगा नहीं दी। जहाँ सब फेल होते है वहाँ ब्रह्मास्त्र (अब तो 'एटम' कहूँ तो ठीक होगा) की तरह अकेली खुशामद ही सफल होती है।

अगर आप खुशामद करना जानते है तो कोई परवाह नहीं कि आपके पास डिग्रियाँ है या नहीं, आप योग्य है या अयोग्य—नौकरी आप को ही मिलेगी। आप शकल से लाख शेखचिल्ली हों और आप की जेबों मे चाहे सूराख ही होरहे हों, लेकिन खुशामद के शस्त्र से प्रेम के पंथ मे आप बड़े-से-बड़े स्वरूपवान और लखपती को पछाड़ सकते है !

दूर क्यों जाते है, खुद मेरी खुशामदी सफलताओं का ब्योरा सुनिए न ? कभी हम साहब कुल १०) महीने के कम्पोजीटर थे। १५ साल बाद इस तेजी के जमाने मे बहुत होता तो ५०) होगये होते। लेकिन हाथ मे 'स्टिक' पकड़ते-पकड़ते ठेके पड़ गई होती, स्टूल पर बैठते-बैठते कमर कमान होगई होती, 'करेक्शन' करते-करते कटाक्ष कोटरलीन होगये होते और बहुत मुमकिन था कि शीशे की गर्मी श्वास-प्रश्वास द्वारा फैफड़ों तक पहुँच गई होती और अब तक हमे हमारे बिरादरीवालों ने 'सत्यधाम' भी पहुँचा दिया होता। लेकिन वह तो यह कहिए कि तकदीर हमारी कुछ अच्छी थी जो शीघ्र ही हमने खुशामद के महत्व और महात्म्य को हृदयंगम कर लिया, उस्तादो की चिलम भर-भरकर हजारों नई-पुरानी कविताएं याद कर डाली और पचासों जगह उन्हे अपनी बताकर सुना डाला, तिकड़म से नकल कर-करके विशारद और साहित्यरत्न पास कर लिये, कवियों की खुशा-

मद करके कुछ तुकें जोड़ना सीख लिया, महान कवियों और लेखकों की नई-पुरानी कृतियों पर प्रशंसात्मक लेख लिखे, खुशामद कर-करके उन्हें पत्रों मे छपवाया और इस तरह क्रम-क्रम से साधना करने पर आज यह दिन भी आया कि लोग भूल गये कि हम पहले क्या थे ? अब तो हम है महामहिम स्वनाम धन्य श्री......कवि, लेखक और पत्रकार !

तो भाई मेरे, इसीलिए कहता हूं कि खुशामद से भागो मत ! इस दुनिया मे सब कुछ असत्य है। सत्य केवल दो वस्तुएं है, वह यह कि अगर नालायक हो तो खुशामद करो। और लायक हो तो खुशामद कराओ। संसार और सफलता का रहस्य बस इसीमे छिपा है !

इतनी भूमिका और खुशामद के इस महामहिमामय माहात्म्य के बाद आप शायद इस कला के कुछ तौर-तरीके अवश्य जानना पसन्द करेगे। यों तो यह विषय योगियों के लिए भी दुर्लभ और तपस्वियों के लिए भी परम गहन है, पर क्योंकि अपनी पत्नी के पुण्य प्रताप से मैंने इसमें यत्किंचित सिद्धि लाभ की है, इसलिए, अपने चौथाई शताब्दी के कुछ अनुभूत प्रयोग आपकी सुविधा के लिए यहां देरहा हूँ। आशा है मेरे इस परमार्थ से पाठकों का स्वार्थ अवश्य ही साधन हो सकेगा।

खुशामद की कला मे सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण बात यह है कि आप खुशामद तो करे, लेकिन खुशामदी न समझे जाये। यानी, जिसकी खुशामद आप करना चाहते है उसे यह न मालूम हो कि मेरी खुशामद की जारही है।

आप में से शायद कुछ मेरी इस बात से सहमत न हों और कहें कि जब परमात्मा सीधी प्रशंसा यानी खुशामद से खुश होता है तो जीवात्मा क्यों नहीं होगा ? दुनिया में ऐसा कौन है जिसे अपनी खुशामद खुद अच्छी नहीं लगती हो। लेकिन मैं कहता हूँ कि ये "टेकनीक" अब पुराना होगया, घिस गया और आज के खुशामद-पसन्द इससे भली-भांति परिचित होगये है। अब हर समय, जी हुजूर, हाँ हजूर, बहुत ठीक, वाह-वाह, क्या कहने है आदि पर रीझने वाले निरक्षर राजा-रईस, नवाब, शौकीन सब या तो परमधाम पहुँच गये या वहाँ की बाट जोह रहे है ! आजकल के हम खुशामदियों

का पाला पड़ता है उन पढ़े-लिखे मनोविज्ञान के पंडितों से, जो स्वयं खुशामद कर-करके ही आज खुशामद कराने की स्थिति पर पहुँच सके हैं।

इसलिए हे नई दुनिया के नये खुशामदियो! आज के युग मे भूलकर भी सीधे अपने आराध्यदेव की प्रशंसा न करो। इस सम्बन्ध में मेरा पहला गुर याद रखो कि उनकी प्रशंसा नहीं, उनसे सम्बन्धित चीजों की प्रशंसा करनी चाहिए। हमें उनकी रुचियों का अध्ययन करना चाहिए। हमे ध्यान से पहले यह देखना चाहिए कि उनके कमरे में चित्र कैसे लगे हैं, मूर्तियां किसकी है, वह सिगरेट कौन-सी पीते हैं, उन्हें सिनेमा कैसे पसन्द आते है, वह साहित्य कैसा पढ़ते है, कपड़े कैसे पहनते है? और फिर स्वयं उनकी प्रशंसा न करके आप उनकी चीजों की प्रशंसा कीजिए, उनकी रुचियों की सराहना कीजिए और फिर भले ही कवियों की अतिशयोक्ति का भी उल्लंघन करते हुए कहिए कि वाह! क्या पांवपोश आपने चुनकर रखा है कि इस पर पैर पोंछने के बजाय मुँह रगड़ने को मन ललचा आया है! और कहिए कि जो सिगार आप पीते है, शायद उसकी महक आपको उतनी मोहित नहीं करती होगी, जितनी आपके पास बैठने वाले को करती है?

याद रखिए कि अफसर से कभी भूलकर भी यह न कहो कि हुजूर जरा तो खुशामद मान जाइए। इससे काम बनता भी होगा तो बिगड़ जायगा। इस सम्बन्ध मे मेरा दूसरा सूत्र याद रखिए और उससे कहिए कि सरकार, आपसे पहले अफसर तो खुशामद से पिघल भी जाया करते थे, लेकिन आपके यहाँ तो खुशामद से भी काम नहीं चलता। और फिर देखिए कि यह मक्खन कितना चिकना साबित होता है?

खुशामद का पहला गुरुमंत्र यह है कि जिसकी खुशामद करनी हो उसके निकट उसकी महत्ता और अपनी अज्ञता अवश्य प्रदर्शित की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए आप उनकी मेज पर रखे हुए फाउन्टेनपेन को उठा लीजिए और कहिए अरे, यह नया माडल बाजार में कब आया? वाह, क्या खूब! अजी, इसमें स्याही कैसे भरी जाती

है? और शीघ्र ही आप देखेंगे कि मछली जाल में फंसती हुई चली आती है!

एक वार की वात है कि एक सज्जन से मुझे कुछ काम निकालना था। लेकिन उनके बारे मे सुन रखा था कि हजरत बड़े आदर्शवादी है, गजब के कट्टर है, खुशामदियों को ज़रा भी मुँह नहीं लगने देते। काम बहुत-ज़रूरी था। मैंने उनके पास आना-जाना शुरू कर दिया। रोज नये-नये नुस्खों का व्यवहार करता, मगर वे सब खाली जाते। मैं हैरान था कि क्या किया जाय? अंत में मालूम हुआ कि श्रीमानजी को मुफ्त मे होमियोपैथी करने का शौक है। मैंने मन मे सोचा कि बस, अब मैदान मार लिया! मैं रोज-रोज उनके पास नये-नये मरीज़ ले जाता और हर दूसरे-तीसरे दिन उनके चगे होने के समाचार उन्हें पहुँचाता। कहता कि डाक्टर साहब, क्या यश आपके हाथ में है कि तीन खुराक के लेते ही बीमार चारपाई से उठकर भागने लगा, आज तो वह अपने काम पर भी चला गया। डाक्टर साहब, उसके बच्चे आपको बड़ी आशीष दे रहे है। कभी कहता यह 'केस' तो डा० साहब आपने ऐसा ठीक किया है कि इसमे सारे शहर के डाक्टर ना कर गये थे। कभी कहता डाक्टर, आप तो सब-कुछ छोड़कर एक धर्मार्थ अस्पताल खोल लीजिए। हज़ारों आत्माएं आपको दुआएं देंगीं। गरज यह कि पंद्रह दिन के इस अचूक प्रयोग मे डाक्टर साहब वह सीधे हुए कि जितना मैं चाहता था उससे अधिक काम ही उन्होंने नहीं कर दिया, वल्कि समय-समय पर सदैव मुझे उपकृत करने को उत्सुक भी रहने लगे।

कहते हैं कि सेवा करने से ही मेवा मिला करती है और लोग खुशामद के मार्ग मे सेवा को सबसे बड़ा साधन बताया करते है, वह है भी, मगर उस तरह से नहीं, जिस तरह से लोग कहते है या करते है। यह ठीक है कि भरी सभा मे चरण छूने से, रात को सोते समय हठपूर्वक उनके चरण दावने से, वैरे की जगह खुद ही चाय बना लाने से आज के देवता अभिलषित पदार्थों को दे दिया करते है, मगर यह तरीके पुराने है और इनमे (वैसे तो हम खुशामदियों मान और आत्मा नहीं होती मगर फिर भी) आत्मा है। इसलिए आपको चाहिए कि आप मेरे

कि आप बाबूजी की सेवा छोड़कर बीबीजी की सेवा पहले करें और बीबीजी का काम करते-करते अगर कहीं उनके बच्चे रोते-ठुनकते नजर आयें तो पहले उन पर ध्यान दे। यह वह अमोघ अस्त्र है जो कभी खाली नहीं जाता। बाबूजी की लाख काम न करके देने की इच्छा हो, मगर बीबीजी के कहे को टाल सकना, उनकी तो क्या उनके अग्रजों के भी वश से बाहर की बात है—और बीवियों को प्रसन्न करने का गुरु उनके बच्चे खिलाने से बढ़कर आज तक दूसरा कोई ईजाद ही नहीं हुआ।

इसलिए सुलझे हुए खुशामदी प्रायः पीछे के दरवाजे से ही प्रवेश प्राप्त किया करते हैं और इसमें कोई बुराई की भी बात नहीं है। बाबा तुलसीदास ने भी अपनी 'विनयपत्रिका' सीताजी के मार्फत ही रामजी को पहुंचाई थी।

और बच्चे! वे तो कार्य-सिद्धि की कुंजी हैं। सुनिए, जो काम थैलियों से नहीं होता, सिफारिशों से नहीं होता, वह चुटकियों में बच्चों से होजाया करता है।

उदाहरण के लिए एक सज्जन आल इंण्डिया रेडियो मे नौकरी के इच्छुक थे। दो साल तक पार्लमेंट स्ट्रीट के चक्कर काटते-काटते दो दर्जन जूते घिसकर बदल चुके थे। एक दिन बातों-ही-बातों मे उन्होंने मुझे अपना दर्द कह सुनाया। मैंने कहा, अरे बावले! क्यों अपनी कमाई बाटा कम्पनी को बॉट रहा है? जा, फीरोजशाह रोड के अन्त मे जो नं०........की कोठी है, उसमे घुस जा और देख जाकर कि श्री ..... जी के बच्चे अपने पिताजी को क्या संबोधन करते है?

कहने की आवश्यकता नही कि सज्जन वहॉ गये और बच्चों की देखा-देखी बाबूजी को 'दद्दा' कहने लगे और परिणाम यह हुआ कि आज ३ साल बाद दद्दा-दद्दा कहते स्वयं सबके दद्दा बन बैठे है!

हो सकता है कि आप भी इस नुस्खे को आजमाने की दिल में ठान ले। अवश्य आजमाइए, लेकिन उस तरह से नहीं, जिस तरह से एक बार शिमले के उस कुली ने आजमाया था।

बात यह हुई कि शिमले मे एक जोड़े ने रिकशा किराये पर ली

और उस पर बैठकर चल दिये। रास्ते-भर एक-दूसरे को डार्लिंग-डार्लिंग कहकर न जाने वह क्या-क्या बातें करते रहे? स्थान पर पहुंचकर जब बाबू ने कुली को पैसे दिये तो कुली ने अनुभव किया कि मजदूरी तो कम दी जारही है। उसने तपाक से श्रीमतीजी से कहा, "डार्लिंग इतने से काम नहीं चलेगा, ये तो बहुत कम है!"

इसके बाद की घटना की कल्पना आप स्वयं कर सकते हैं। इसीलिए मेरा कहना है कि बच्चों का अनुकरण अवश्य कीजिए, मगर बच्चों की तरह से नहीं समझदारों की तरह से। क्योंकि खुशामद नासमझों के वश का रोग नहीं है।

हे हे मलेरिया महाराज....!

"हम संसारियों पर आपकी कृपा हित की दृष्टि से ही होती है। यदि प्रति वर्ष हजारों-लाखों जीवों पर आप यों कृपा न करते रहें तो हिन्दुस्तान की आबादी भला कहीं समा सकती है? हम लोगों को अकाल मृत्यु से बचाने के लिए, हमें सेहत, गरीबी और दूसरी झंझटों से दूर रखने के लिए और संतति-निग्रह एवं ब्रह्मचर्य जैसी फालतू चीजों के प्रचार-निषेध के लिए ही आपने धराधाम को सुशोभित किया है। हे दीनबन्धु, आपकी जय हो, जय हो, जय हो!"
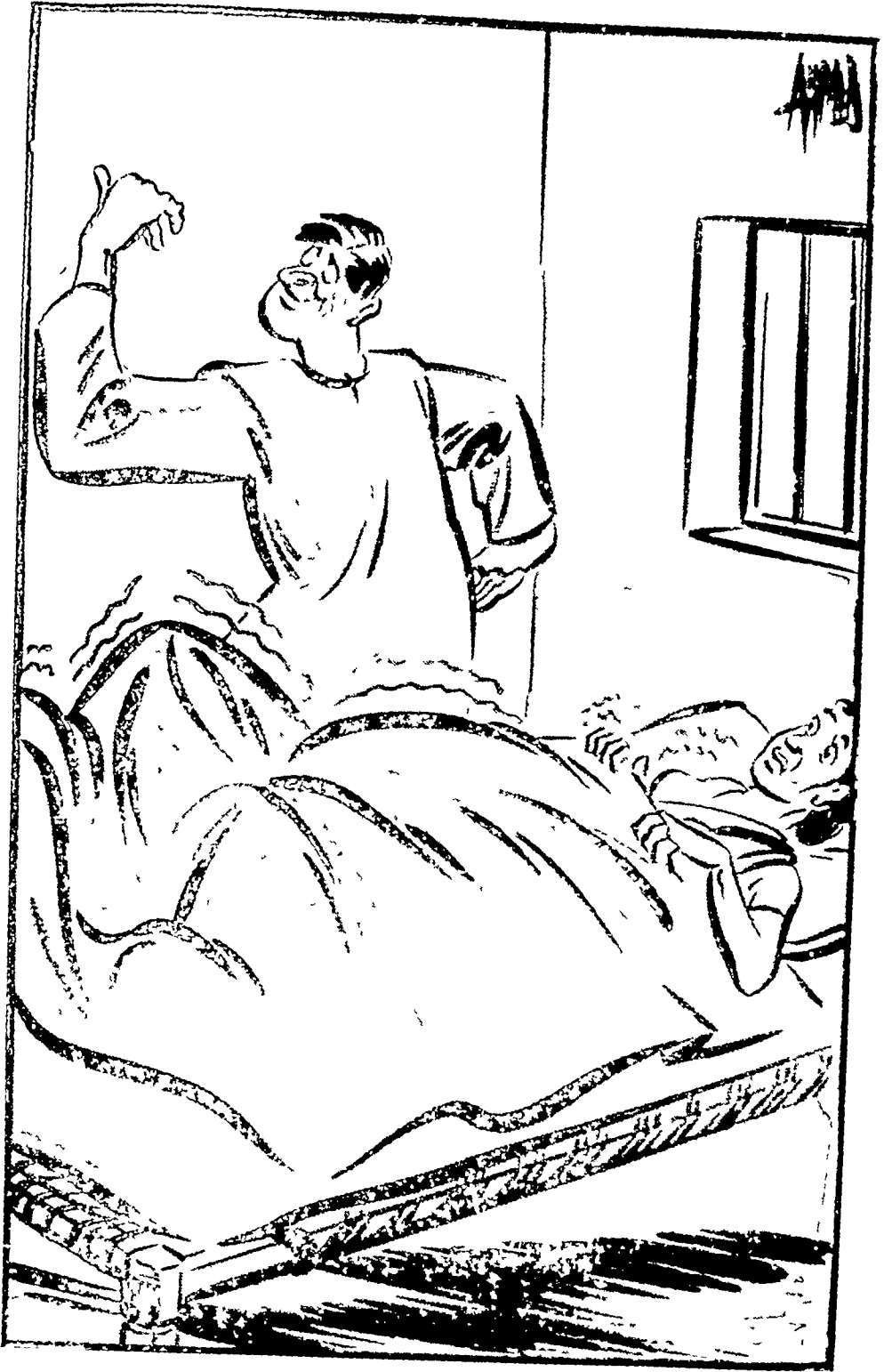
"उन्होंने लिहाफ़ के ऊपर रजाई, रजाई के ऊपर कम्बल, कम्बल के ऊपर गद्दा, गद्दे के ऊपर दरी और दरी के ऊपर चादर ओढ़कर जिस शैया-नृत्य का प्रदर्शन किया कि............!"

हे महामहिम,

आप वैद्यों के लिए अगम और डाक्टरों के लिए दुर्गम हैं। होमियोपैथ आपके आगे आने से हिचकते हैं और हकीम बेचारे की तो बस, हिचकी ही बँध जाती है। इस तीन लोक मे आपके उतारे का कोई और उपाय संभव न समझकर, हम सब आपकी शरण आये हैं, त्राहिमाम प्रभो !

हे ज्वराधीश,

अपने महाशत्रु कुनैन को चारों कोने चित्त पछाड़कर, इस बार आपने जो परम पौरुष प्रदर्शित किया है, उससे बेचारी कुटकी के प्राण चुटकी मे निकल गये है ! तव चिरायता, ज्वरनाशक और जूड़ी-ताप भला आपका क्या बिगाड़ सकेंगे ? जब पैल्यूड्रीन और मैपाक्रीन की कुछ नहीं चलती तो बेचारे तुलसी के पत्ते, अजी चढ़ाइए उन्हें शालिग्रामजी पर !

हे महाकाल,

कौन ऐसा है जो आपके प्रबल प्रताप से परिचित न हो ? भरे जंगल मे शेर से बचा जा सकता है, वरसती रात में टूटी छत के नीचे टपके से बचा जा सकता है, ब्लैक मार्केट करते हुए सजा से बचा जा सकता है, दफ्तर में बड़े बाबू की घुड़की से भी निजात मिल सकती है और घर मे श्रीमतीजी की लन्तरानियों से भी बचने के तरीके ईजाद होगये है, लेकिन हे अरि-मद-मर्दन ! जिस पर जीवन में आपकी एक बार कृपा होगई, उसकी दवा तो शायद फिर धन्वन्तरि के पास भी नहीं है।

हे प्रलयंकर,

भारतवर्ष मे वास करने वाले तेतीस करोड़ देवताओं की (इधर देवताओं की जनसंख्या भी बढ़ गई है) आपके आतंक से घिग्घी बँध चुकी है। बारहखम्बे मे वास करने वाले बड़े-बड़े विलासी इन्द्र, वाटर वर्क्स के सुपरिन्टेन्डेंट वरुण, बिजली कम्पनी के मैनेजर सूर्य और अखबारों के एडीटर-रिपोर्टरों के दांत आपकी छाया-मात्र मे किटकिटा कर बज उठे है, बड़े-बड़े गुण्डे और थानेदार आपके डर के मारे कम्बल, रजाई, सौड़ और गद्दों में जा छिपे है। यही नहीं, इन सबसे भी परम महिमामयी और अदमनीय हमारी 'उन' पर जो उस दिन आपकी कृपा हुई, तो मैं हैरान होगया ! उन्होंने लिहाफ के ऊपर रजाई, रजाई के ऊपर कम्बल, कम्बल के ऊपर गद्दा, गद्दे के ऊपर दरी और दरी के ऊपर चादर ओढ़कर जिस शैया-नृत्य का कौशल प्रदर्शन किया था, उसे यदि रविबाबू देख पाते तो निश्चय ही वह अपनी शांति-निकेतन की कला-कल्पना पर दीन हो उठते ! उदयशंकर के कलाकेन्द्र में भी इस प्रकार के नृत्य की कोई संभावना तक अभी पैदा नहीं हुई होगी। अहह ! कैसा अपूर्व दृश्य था ! खाट हिल रही है, कि देवीजी हिल रही है कि पास खड़ा मैं हिल रहा हूँ, कि हम सबको हिलाने वाली जमीन हिल रही है—कुछ समझ मे ही न आता था ? ऐसा लगता था कि अपने पूरे वेग पर महापिनाकी का तांडव शुरू होगया है और परम भगवती अपने लास्य के लिए अपनी शैया पर से उठने ही वाली हैं।

हे प्रभो,

अगर हमारी सरकार पाकिस्तानियों से फुर्सत पागई होती या कम्बख्त डाक्टरों ने कुनैन मे आरारोट न घोला होता और वैद्यजी की पुरानी पुस्तकों को दीमक न चाट गई होती तो हम आपको इतना कष्ट न देते। लेकिन अब तो हाल यह है कि अनाड़ी डाक्टरो ने दे-देकर इन्जैक्शन मेरी बाँह को छलनी कर दिया है. मेरी पत्नी के गले मे पीपल का पत्ता लाल कपड़े में बँधा लटकता रहता है, मेरे बच्चे एक आँख में काजल लगाये फिरते हैं और उनकी दादी ने ताक पर मनौती के इतने

पैसे इकट्ठे कर रखे है कि अगर उन्हें ले सकने की हिम्मत मुझे भगवान दे दे तो सच समझिए कि कम-से-कम एक महीने की शाक-भाजी का काम तो चल ही सकता है !

अंतर्यामिन,

काबुल और काश्मीर का रास्ता खतरे में है, इसलिए मुनक्काओं का लोप होगया है, सेब और अनार के दर्शन दुश्वार होरहे हैं, मौसमी बेमौसमी होगई है और मिट्ठे खट्टे निकलने लगे हैं। तब, पानी भरी गडेलियाँ और पानी-पानी दूध ही तो इस १२५ पौण्ड, ५ फुट ६ इञ्च वाले शरीर का आधार है।

परम दुर्द्धर्ष,

वेचारे परशुरामजी तो केवल २१ वार ही अकेले क्षत्रियों का नाश करके थक गये, लेकिन आप शत-सहस्रों वर्षो से विना थके सृष्टि के दीन-हीन भटके प्राणियो के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते चले आरहे है। मेरी दादी जिसे जीवन मे ५६ बार खाट से नीचे नहीं उतार सके, वह आपकी तीन पालियों में ही चारों कौने चित्त होगई ! मेरी बूआजी जो मुहल्ले-भर के झगड़ों मे विजय-श्री प्राप्त कर लेती थीं, आपसे उलझ कर चल बसीं ! यही क्यों, पड़ौसी धनुआं, मोदी सालिगराम, घीसा तमोली, गड्डर हलवाई, मंगू पहलवान, जिन सबको मै अपने मैले-कुचैले कपड़ों मे खाँसते-खंकारते देखने का अभ्यासी होगया था, वे सब आपकी सेवा के लिए यहाँ से विदा होचुके हैं। छबीलो कुँजड़िन और साँवली मालिन जो ग्राहकों के चुक जाने पर भी अपने अनन्त झगड़ों को बड़ी ही सुखद नागरिक भाषा में चुकाया करती थी, देखता हूँ कि पिछले सप्ताह से उनकी सुमधुर ध्वनि भी खिड़की की राह, मंद-मथर गति से मेरे कमरे मे प्रवेश नहीं कर रही। और, हाँ, आपके प्रताप से अपरिचित वह गंगोली डाक्टर का मंगोली कम्पाउन्डर, जो डटकर मिक्चर में पानी मिलाया करता था, कल से डिसपेन्सरी से गायब है !

हे हे मलेरिया महाराज,

इसमे तिल-मात्र भी सन्देह नहीं कि हम संसारियों पर आपकी कृपा हित की दृष्टि से ही होती है। यदि प्रतिवर्ष हजारों-लाखों जीवों पर आप यों कृपा न करते रहे, तो हिन्दुस्तान की आबादी भला कहीं समा सकती है ? लोग आपस में ही कट-कट कर मरने लगें, नित्य नये महाभारतों की सृष्टि हो, प्रतिवर्ष एक विश्वयुद्ध की संभावना बनी रहे और न जाने क्या-क्या होने लगे ? अस्तु, हम संसारियों को अकाल मृत्यु से बचाने के लिए, सेहत, गरीबी और दूसरी झंझटों से अलग रखने के लिए और संतति-निग्रह एवं ब्रह्मचर्य जैसी फालतू चीजों के प्रचार-निषेध के लिए आपने धराधाम को सुशोभित किया है, हे दीनबंधु, आपकी जय हो, जय हो, जय हो !

हे अशरण शरण,

अब कुनैन नहीं खाई जाती। कान झनझना उठे है, दिमाग पिनपिना उठा है और तबियत, उसकी न पूछो प्रभो ! अपने ही घर में शरणार्थियों की-सी हालत होरही है ! हिन्दुस्तान पहले से ही प्राथमिक चिकित्सा में दक्ष होजाय, यह सोचकर आपने घर-घर को अस्पताल मे पलट दिया है। अनाज का राशन है। कन्ट्रोल टूटने पर वह भी गायब होने वाला सुनते है ! इस सबका आपने पेशगी उपाय कर दिया है कि पहले तो आपका कृपा-पात्र कुछ खाने-पीने के लायक ही न रहे, फिर अगर खाने-पीने पर उतर ही आये तो ज्यादा खाया ही न जाय और जो भी खाये, वह पचा न सके।

बहुत हुआ प्रभो,

दीपावली बीत गई। उस अखंड दीपराशि में निश्चय ही आपके वाहनों(मच्छरों) का अभाव होगया है। इसलिए आपको कही आने-जाने मे बड़ी असुविधा होती होगी। फिर जिस कार्य के लिए आपने धरती-तल पर अवतार धारण करके भारतवर्ष मे प्रवेश किया था, उसे हमने हिन्दू-मुसलमानों के झगड़ों मे स्वतः ही पूर्ण कर लिया है, अब आप अपर लोकों को प्रस्थान करें तो बड़ा शुभ हो। देखिए, सुदूर पश्चिम मे

चर्चिल आपको चुनौती दे रहे हैं, उधर अफ्रीका मे मलान आपका आह्वान कर रहा है। लेकिन भारतवर्ष की महामहिमा से प्रभावित होकर यदि आप इसे न छोड़ना चाहते हों तो हे कूटनीतिज्ञ, क्यों नही आप अपना हेडक्वाटर कराची मे खोल लेते ? मिस्टर लियाकत वहाँ आपके स्वागत के लिए बड़ी लियाकत से अर्घ्य-पाद्य लिये खड़े है !

ओ३म् शान्ति, शान्ति, शान्ति !

अजब मुसीबत है.....!

"अजब मुसीबत है, अभिज्ञान शाकुन्तल या मेघदूत पढ़ने बैठता हूँ
किताब छीन लेती है कि अब तुम्हारी उम्र इन्हें पढने की नहीं रही।
न्यशतक या भगवद्गीता लेकर बैठता हूँ तो सिर पकड़कर धम्म से बैठ
ती हैं कि हाय राम! उकताकर कभी सिनेमा-थियेटर में जा बैठता हूँ
लौटने पर घर में एक नया सिनेमा तैयार मिलता है और जब सबसे
कर तुलसीकृत रामायण गाने लगता हूँ तो कहने लगती है कि अब
त में तो सो लेने दिया करो!"

"सुबह से लेकर शाम तक बीस आते हैं, पचास जाते हैं। अब यह भी कोई बात हुई कि वे कौन थे, ये कौन हैं?"

१२

कोई एक-दो बार की बात नहीं, हजारों बार अपनी 'उन'से कह-कहकर हार गया हूँ कि देखो, बात-बात में दखल देना अच्छा नहीं होता। पर वे हैं कि जैसे अमरीका की धमकियों की रूस चिन्ता नहीं करता, या जैसे हमारे देश में आजकल नेताओं के भाषणों का कोई असर नहीं होता—वैसे ही वे मुझ गरीब की बात पर कोई ध्यान ही नहीं देतीं।

अरे भाई, शाक-भाजी में, रसोई-पानी में, कपड़े-लत्ते में, जेवर-गांठे में, चलन-व्यवहार में और घर-गृहस्थी की दूसरी छोटी-बड़ी चीजों में अगर आप दखल देती हैं तो ठीक है। बच्चों की पढ़ाई में, घर के प्रबन्ध में, मेहमानों की खातिर में आप दिलचस्पी लें तो उसे भी कोई बुरा नहीं बताता। लेकिन मुझे कुर्त्ता छोड़कर बुशशर्ट पहननी चाहिए और धोती को खूंटी पर टांग पतलून लटका लेनी चाहिए—यह सलाह भला आप क्यों देती हैं? मेरा लम्बी-लम्बी मूछें रखना, जरा संजीदगी से चलना, जरा कम बातें करना या बाहर छड़ी लेकर निकलना—समझ में नहीं आता उनको क्यों नहीं सुहाता?

ठीक है, आप मलमल छोड़कर वायल खरीदिए, वायल फेंककर सिल्क लीजिए, जार्जेट छांटिए, सलवार पहनिए, गरारा पहनिए—और मुझे तो सच बताऊँ उनके पैंट पहनने में भी कोई खास एतराज नहीं है। पर भगवान के नाम पर मेरे खादी के धोती-कुर्त्ते को तो रोजाना मत कोसिए।

बाबा, खादी के दोष-गुण मैं तुमसे अधिक जानता हूँ। तकली पर सूत निकालते-निकालते अंगुलियों में बल पड़ गए हैं। खादी के

आदी को यह कहना कि वह जल्दी फटती है, फटकर मिल नहीं सकती, दो घंटे बाद मैली होजाती है, मोटी होती है, छोटी होती है, यह होती है, वह होती है—कोई बात हुई ?

खैर, मेरे रहन-सहन और कपड़ों में आप दिलचस्पी लेती है और उनमे अपनी रुचि का परिवर्तन करना चाहती है तो करो भाई, वेद-शास्त्रों के अनुसार इस शरीर के अर्द्धांग पर तो आपका अधिकार है ही। लेकिन यह क्या बात हुई कि सुबह उठते ही खानातलाशी शुरू होजाती है कि यह चिट्ठी किसकी है, यह पुर्जा कहॉ से आया है, ये नोट कैसे है और रात-रात मे यह रूमाल किसका उठा लाए हो ?

अरे भई, एक तुम न मानो तो क्या, दुनिया तो मुझे भला आदमी मानती ही है। कवि हूँ, लेखक हूँ, पत्रकार हूँ—सुबह से लेकर शाम तक २० आते है और ५० जाते हैं। अब यह भी कोई बात हुई कि वे कौन थे, ये कौन है ? आज ये फिर क्यों आये, तुम बार-बार इनके यहॉ क्यों जाया करते हो, मुझे इनका यहॉ आना पसन्द नहीं, यह अच्छे आदमी है, वह बुरे आदमी है, यह चतुर है, वह भोदू है इन्हे देखकर मेरा मन बनाने को करता है, इनके सामने मैं चाय लेकर नहीं आऊगी—मैं कहता हूं कि जब पूछा जाय और आवश्यकता हो तब तक के लिए आप इन शुभ सम्मतियों को अपने पास नहीं रख सकतीं ?

राशन कम होगया, आटे मे सकरकन्द मिला है, चावल ऐसे आते हैं, सूजी नही मिलती, मैदा कहॉ गई—ठीक है, पूछिए इन बातों को; कौन टोकता है ? लेकिन कृपा करके यह तो बताइए कि गेहूँ के भावों के साथ सोने के भावों का क्या सम्बन्ध है ? साडियों के डिजाइनों का क्या रिश्ता है ? चप्पलों के सैटों की क्या तुक है ?

मैं तो तग आगया हूं—हजार तरह से कह देखा, मगर उनका हर बात में दखल देना बन्द ही नही होता। अजब मुसीबत है, अभिज्ञान शाकुन्तल या मेघदूत पढ़ने बैठता हूँ तो किताब हाथ से छीन लेती हैं कि अब तुम्हारी उम्र इन्हे पढ़ने की नहीं रही। वैराग्य-शतक और भगवद्गीता लेकर बैठता हूं तो सिर पकड़कर धम्म से बैठ जाती हैं कि हाय राम ! उकताकर किसी सिनेमा-थियेटर मे जा बैठता हूं, तो लौटने पर घर मे एक नया सिनेमा तैयार मिलता है।

और जब सबसे ऊबकर अन्त में तुलसीकृत रामायण गाने लगता हूं तो कहने लगती है कि अब रात में तो सो लेने दिया करो !

लैम्प बुझाकर सोने लगता हूं तो कहती है यह क्या किया, इसे जला दो। जलती हुई छोड़ देता हूं तो डपटती है जरा कम कर दो। जल्दी सोने लगता हूं तो कहती है, अभी ६ बजे से ही खुर्राटे लेने लगे ! देर तक नींद नहीं आती तो हर मिनट पर टहोकती है कि क्या हुआ, आज नींद क्यों नहीं आती ?

एक दिन मैं उन्हें डाक्टर के पास लेगया। डाक्टर देखकर मुस्करा दिए !

मैंने हैरान होकर पूछा, "क्यों ?"

बोले, "इलाज की जरूरत इन्हें नहीं, आपको है।

मैंने आश्चर्य से अपने शरीर पर निगाह डाली, कहीं कोई रोग-दोख दिखाई नहीं दिया !

डाक्टर बोले, "आप क्या काम करते हैं ?"

मैंने कहा, "काम ? अजी आप मुझे जानते नहीं ? मैं तो स्वनाम धन्य"! अजी, कवि हूं, लेखक हूं, पत्रकार हूं !"

बोले, "बस यही बीमारी है, इसीका इलाज करवाइए !"

मैंने हैरान होकर पूछा, "डाक्टर, क्या कहते हैं आप ! कविता, लेखन, पत्रिकारिता—बीमारी ! मैं समझा नहीं ?"

तो बोले, "यही इसका इलाज है, जिस दिन आपने इन्हें बीमारी समझ लिया कि समझलो बीमारी चली गई !"

साहित्य का भी कोई उद्देश्य....?

"जहाँ तक मेरा संबंध है, मै माल 'आर्डर' पर 'सप्लाई' करता हूँ। मैने लेख-कहानिया पत्रों की माँग पर लिखे है, नाटक परीक्षाओ मे लगने को तैयार किये है, समालोचनात्मक ग्रन्थ बिकने को प्रस्तुत किये है और उपन्यास अब 'आर्डर' पर लिख रहा हूँ। लिखने से पहले प्रकाशक खोजना और लिखने के बाद रायल्टी का सही-सही हिसाब लेना—मेरे साहित्य के तो यही दो पवित्र उद्देश्य है। लिखते समय भी पात्र, कथानक और चरित्र-चित्रण के बजाय मेरा ध्यान प्रकाशक या सपादक की चाह और उसकी निर्धारित की हुई पृष्ठ-सख्या पर ही अधिक रहता है।"
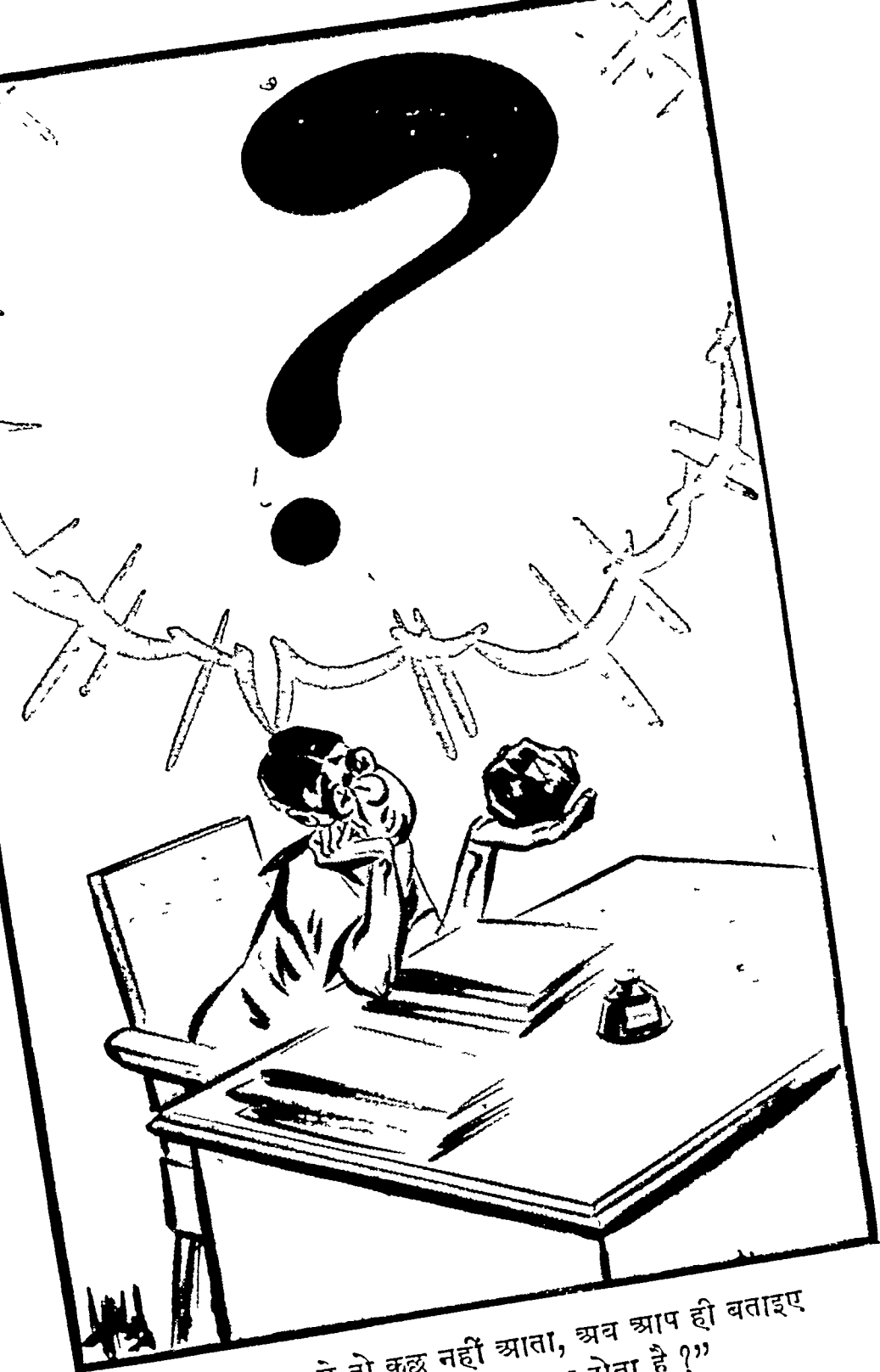
“मेरी समझ मे तो कुछ नहीं आता, अब आप ही बताइए कि साहित्य का उद्देश्य क्या होता है ?”

१४

साहित्य का भी क्या कोई उद्देश्य होता है ? मेरी समझ में तो अभी तक कुछ नहीं आया। पर होता अवश्य होगा। क्योंकि अगर सचमुच कोई उद्देश्य नहीं होता, तो तारों-भरी रात की मादक मदहोशी में जब संसार सुख की नींद में बेसुध पड़ा रहता है, ये कवि लोग जलती आँखों से चन्द्रमा को न ताका करते, तारों से तार न मिलाया करते, वायु की सिसकियां न सुना करते और अकारण ही ये बुद्धिमान अपने देश, नगर, मुहल्ले और पड़ौस क्या, पास लेटी चंद्रमुखी पत्नी को भूलकर कभी चाँदनी की याद न करते, कभी निशा की साड़ी न खींचते, कभी स्वर्गंगा मे विहार न करते और कभी उषा के अरुणिम कपोलों पर उनकी ललचाई नजरें न फिसलतीं !

उद्देश्य न होता तो क्या कहानीकार स्वयं अपनी कहानी को भूलकर बस के स्टैंडों, कॉफी हाउसों, क्लबों, नाचघरों और वेश्यालयों तक में दौड़-दौड़कर बार-बार पहुँचते ? आवारों की तरह बाज़ारों में घूमते ? पार्कों मे फिरते ? प्लेटफार्मों पर ताकते ? गलियों को नापते ? खिड़कियों से झाँकते ?

उद्देश्य न होता तो यों आज के नाटककार वर्तमान को भूलकर भूत का नाटक रचा करते ? भविष्य के पर्दे उठाया करते ? उपन्यासकार इस कागज की तंगी के जमाने मे भी पोथे-पर-पोथे रचते-विरचते चले जाते ?

उद्देश्य न होता तो आलोचक इतना गला क्यों फाड़ते ? साहि... क्यों छपता ? क्यों बिकता ?

सचमुच कुछ-न-कुछ उद्देश्य तो साहित्य का

पर सच बताऊँ, अब तक इसका उद्देश्य मेरी समझ में नहीं आया ? यों मेरी साहित्य की साधना किसीसे कम नहीं है। अपने साहित्यिक जीवन के प्रवेश की रजत जयंती मनाने मे अब केवल ५ वर्ष की ही देर बाकी है। इस बीच मैंने यह नही कि सिर्फ दिल्ली मे रहकर भाड़ ही भूंजा हो—स्कूलों के नोट्स और किताबों की कुंजी से लेकर साहित्य और दर्शन पर बड़े-बड़े ग्रंथों को जन्म दिया है ! स्फुट कविताएं लिखी हैं, खड काव्य छपाए है, गल्प लिखी है, नाटक लिखे हैं, और उपन्यास लिख रहा हूँ। टनों कागज़, प्रकाशक लोग, मेरी कृत्तियों पर अब तक गला चुके है। और यह भी नहीं कि पुस्तकें छप कर ही रह गई हों। वे बिकी हैं। उनके सस्करण भी हुए है। जनता ने उन्हें किस हद तक पसंद किया है, यह तो मैं नहीं जानता, मगर समालोचकों के शानदार सर्टिफिकेट उन्हें अवश्य प्राप्त होगये है !

लेकिन अगर आप मुझसे पूछें कि लिखने के पीछे मेरा क्या उद्देश्य है, तो बात आपको चाहे निराशाजनक प्रतीत हो, पर मैं आप से कुछ छिपाऊँगा नहीं।

बात यह हुई कि बचपन में पढ़ना-लिखना कुछ जम नही पाया, सोहबत-सोसाइटी भी नहीं मिली, स्वास्थ्य और सलीका भी नहीं था। घरवाले निकम्मा कहते थे और परिवार वाले अवारा। बाजार वाले विश्वास नहीं करते थे और समाज वालों से यद्यपि अभी सीधा वास्ता नहीं पड़ा था, मगर पूत के पॉव पालने मे ही देखकर, पहले से ही उनके कान-पूंछ खड़े होगये थे !

अपने आपको यों चारों ओर से घिरा पाकर मैं विक्षिप्त-सा हो उठा। यह ठीक है कि मैंने हाथ-पैर नहीं फेंके, कपड़े भी नहीं फाड़े, खाना-पीना भी नहीं छोड़ा, पर हॉ, मैं बकने-बौखलाने अवश्य लगा। २४ में से १२ घंटे मेरे बड़बड़ाते बीतते। मेरी मा को विश्वास होगया कि अब बस, कपड़े फाड़ने की नौबत आने ही वाली है। लेकिन तभी अचकचाकर एक दिन देखता क्या हूँ कि मेरी इसी बड़बड़ाहट को लोग कविता कह उठे हैं ! पहले तो मैंने लोगों के इस कथन पर खुद यकीन नहीं किया, मगर जब दोस्तों से शुरू होकर उत्सवों और सभा-

सम्मेलनों तक मे मेरी बेवकूफी की वाह-वाह होने लगी और बात-बात मे मुझ पर तालियाँ पिटने लगी तो मुझे भी आखिर अपने कवि बनने का विश्वास हो ही गया।

लेकिन फिर भी मेरी समझ मे नहीं आया कि कल जब पड़ोस की किसी लड़की को मुँह उठाकर मैं देख लेता था तो मुहल्ले-भर मे फुसफुसाहट फैल जाया करती थी, लेकिन आज जब भरी सभा मे अपने प्रेम का इजहार, अपने दिल का दर्द, अपने अरमानों की दुनिया और अपनी आकांक्षाओं के स्वप्न खुले-से खुले शब्दों मे बेधड़क होकर सुनाता रहता हूँ, मगर क्या मजाल कि लोग फुसफुसाये, अंगुली उठायें या विरोध करें, उलटे मस्त हो-होकर झूमते रहते है। वाह-वाह के सिवाय उनके मुँह से कुछ निकलता ही नहीं, तब मैंने सोच लिया कि यह धन्धा भी कुछ बुरा नहीं है और मैं कवि बन बैठा।

बाद मे तो रामकृपा से लड़ाई छिड़ी; लोगों ने रुपया कमाया। बड़े-बड़े कवि-सम्मेलन हुए। ब्लैक मार्केट के उन रुपयों में मेरा भी साझा हुआ।

मैंने कहा, मेरी कविता बड़बड़ाहट से शुरू हुई, वाह-वाह से विकसित हुई और चाँदी पाकर फूली-फूली है! अगर साहित्य का यही उद्देश्य हो तो मुझे कुछ नही कहना। मगर मैं जानता हूँ कि जैसे साहित्य के बड़े-बड़े खुले-छूटे सांड मुझे कवि नहीं मानते, वैसे ही वे मेरे इस उद्देश्य से भी सहमत नहीं हो सकते।

खैर, न माने वे, लेकिन जहाँ तक मेरा संबंध है मैं माल 'आर्डर' पर 'सप्लाई' करता हूँ। मैंने लेख-कहानियाँ पत्रों की माँग पर लिखे है, नाटक परीक्षाओं मे लगने के लिए तैयार किये है, समालोचनात्मक ग्रंथ बिकने को प्रस्तुत किये है और उपन्यास अब 'आर्डर' पर रच रहा है। लिखने से पहले प्रकाशक खोजना और लिखने के बाद रायल्टी का सही-सही हिसाब लेना—मेरे साहित्य के तो यही दो पवित्र उद्देश्य है। लिखते समय भी पात्र, कथानक और चरित्र-चित्रण के बजाय मेरा ध्यान प्रकाशक या संपादक की चाह और उसकी निर्धारित की हुई पृष्ठ-

संख्या और उस संस्था की ओर ही अधिक रहता है जो उसे छाप रही होती है या जहाँ के लिए वह छपाई जारही होती है।

अपनी नई रचनाएं मैं इसलिए नहीं लिखता कि समय-असमय मुझे लिखने के 'फिट' आया करते हैं। अक्सर मैं योजना बनाकर चीजें लिखा करता हूँ। उदाहरण के लिए एक प्रगतिशील कहानी 'हंस' को, तो एक रोमांचक गल्प 'माया' को। एक सामयिक कविता 'हिन्दुस्तान' को, तो एक अति शाश्वत एकांकी 'नया समाज' को। बाकी गड्ड का माल 'सरस्वती' को, 'माधुरी' को और 'विशाल भारत' को। अब यह नहीं हो सकता कि प्रगतिशील रचना के 'टर्न' पर रोमांटिक चीज़ लिखी जाय, या 'हिन्दुस्तान' की रचना मे गाँधीजी का जिक्र न हो और 'सैनिक' में रचना भेजते समय साधु शब्दों के प्रयोग की गलती की जाय।

हर होली, दिवाली, दशहरा, दुर्गापूजा, श्रावणी, जन्माष्टमी, ९ अगस्त, १५ अगस्त, २ अक्तूबर, २६ जनवरी और ३० जनवरी पर १५ दिन पहले मेरी तड़फती हुई रचना तैयार रहती है। अच्छे कहे जाने वाले पत्रों का कोई विशेषांक, अच्छे समझे जाने वाले प्रकाशक की कोई दूकान, अच्छे कहे जाने वाले पाठक का कोई घर, मेरी कृति से खाली न रहे—इससे अधिक, कम-से-कम मेरे साहित्य का तो कोई और उद्देश्य है नहीं।

यह नहीं कि मेरे मत के भाई-बन्दों की हिन्दी मे कोई कमी हो। अगर कांग्रेस का पार्लियामेंटरी बोर्ड, चुनाव का टिकट देते समय इस बात को कहीं गुण घोषित करदे, तो देखिए कि कितना लम्बा 'क्यू' लगता है। मगर क्योंकि अपने गुणों को हम स्वयं अपने मुँह से कहने में सकुचाते हैं, इसलिए हम लोग प्रकट मे अल्पमत मे दिखाई देरहे है और लोग हमारे परोक्ष मे न जाने साहित्य के क्या-क्या उद्देश्य सिद्ध किया करते हैं।

साहित्य को लक्ष्मी की झंकार न कहकर, बावले मनोवेगों की झंकार कहते है। सीधे स्वहित की साधना न मानकर, उसे लोकहित का साधन बताते है। साहित्य को भौतिक सत्वों मे सहायक न समझ कर उसे लोकोत्तर आनन्द का दाता समझ बैठे हैं! क्या समझ है इन समालोचकों की कि जो मन की विकृति से, मस्तिष्क की अस्वस्थता से

और शारीरिक ह्रास और त्रास से जन्म लेता है, उसे मानवता का उद्धारक समझ बैठे हैं !

साहित्य और मानवता का भी कोई सम्बन्ध है, यह मैं आज तक नहीं समझ सका ? मैं पूछता हूँ कि विरह-प्रपीड़ित यक्ष ने बादलों द्वारा अपनी प्रियतमा को सन्देश भेजकर मानवता का क्या कल्याण किया ? दुष्यन्त ने कण्व के आश्रम की शकुन्तला से विवाह करके मनुष्य जाति पर कौन-सी कृपा की ? राम ने अकेली अपनी सीता को पाने के लिए करोड़ों नर-वानरों को कटवा दिया, सोने की लंका को उजाड़ फेका, क्या यही वाल्मीकि और तुलसीदास की मनुष्यता थी? कृष्ण ने भारत-भर के तेजस्वी वीरों को लड़ा-लड़ाकर मरवा डाला, क्या व्यासजी के साधुओं का परित्राण इसी प्रकार हो सकता था ?

तीन पैड वृन्दावन से मथुरा और चंडीदास, विद्यापति एवं सूरदास बेचारी राधा को रुला-रुलाकर मारते रहे, गोपियों को जीवन-भर तरसाते रहे और उनके प्रशंसक मानवता की इस निमर्म हत्या पर वाह-वाह करते रहे ! अच्छा हुआ कि इन महानुभावों की परिपाटी आगे नहीं चली और आजकल के 'सिनेमिआई' कलाकारों ने उस भूल का परिमार्जन भी कर दिया। आप देखते नहीं कैसे आसानी से सिनेमा में आज के नायक-नायिका साइकिल ऐक्सीडेंट से आसानी से मिल जाते हैं ! घर-समाज सबको तिलाञ्जलि देकर अपनी प्रेम की नैया को खुद ही खे चलते है ! 'इन्टरवल' के बाद थोड़े-से विघ्न आते है, मगर शीघ्र ही या तो अदालत के कटघरे, या किसी के क्षणिक आँसुओं से उनका शमन होजाता है और 'चट्ट मंगनी पट्ट व्याह' की शहनाई बजने लगती है !

अब बताइए साहित्य का उद्देश्य यह होना चाहिए या वह ? मनुष्यता इसमे है या उसमे ? मनोवेग इसमें अधिक झंकृत होते हैं या उसमे ? कहिए "लारलप्पा" अधिक गाया जाता है या "मो-सम कौन कुटिल खल कामी" ? बताइए साहित्य अल्पमत के कुछ ठूँठ पण्डितों के लिए हैं, या स्वतन्त्र भारत के, कोटि-कोटि संवेदनशील युवक-युवतियों के लिए ? मेरी समझ मे तो कुछ भी नहीं आता। अब आप ही बताइए कि साहित्य का उद्देश्य क्या होना चाहिए ?

पत्रकार की पहचान....!

"उसकी भेदती-कुरेदती-सी आँखें, पन्ने-चौकन्ने-से कान, मोर के पंजों-सी छितरी हुई लंबी-लंबी अंगुलियाँ और खम खाई हुई रीढ़ की हड्डी दूर से ही पुकार-पुकार कहती है—अरे, बचो, मैं पत्रकार हूँ !"

"...कि तभी एक दिन एक टूटी-सी बिल्डिंग के एक छोटे-से द्वार के बगल में एक नोटिस-बोर्ड दिखाई दिया। लिखा था—पत्रकार चाहिए !"

१४

मूर्खों के समाज में चाहे पंडित को न पहचाना जा सके और चाहे पंडितों के समाज में मूर्ख की पहचान न हो, लेकिन आजकल के सभ्य समाज में पत्रकार चाहे जैसे कपड़े पहनकर आये, उसे पहचानने मे कोई गलतफहमी नहीं हो सकती।

मुँह खुलने पर तो बछड़े से लेकर बड़े-बड़ों तक की पहचान होजाया करती है, लेकिन यह जो पत्रकार नाम का प्राणी है उसे आँख, कान, नाक, हाथ की अंगुलियों और रीढ़ की हड्डी से अंधेरे मे ही भाँप लिया जा सकता है।

उसकी भेदती-कुरेदती-सी आँखें, पन्ने-चौकन्ने-से कान, मोर के पंजों-सी छितरी हुई लंबी-लंबी अंगुलियाँ और खम खाई हुई रीढ़ की हड्डी दूर से ही पुकार-पुकार कहती है—अरे, बचो, मै पत्रकार हूँ।

जो दुनिया की खबर रखता हो, मगर जिसे खुद अपनी, अपने घर की, घरवाली की—कोई खोज-खबर न हो; जो दुनिया की खबर लेता हो, मगर खुद उसकी खबर लेने वाला दुनिया में कोई न हो; जिसके पास न अपना पत्र हो न अपनी कार हो, मगर फिर भी जो पत्रकार कहलाता हो—उसे तो सूझता क्या, अन्धा भी दूर से ही पहचान सकता है।

कवियो के संबंध में जो यह कहावत है कि वे जन्मजात होते हैं, बनाये नहीं जा सकते, उसे तो इस नई जनगणना मे, कवियों की भारी जनसंख्या ने गलत सिद्ध कर दिया है, लेकिन, पत्रकार जन्म से ही पत्रकार होते है, यह बात एकदम सच है।

बचपन मे जो बालक सबसे अधिक दंगा करता हो, निर्भय

गालियाँ बकता हो, दिन-भर घर से बाहर घूमता हो, पिता जी की फटकार और मास्टर की मार का भी जिसे बिल्कुल भय न हो तो एकदम समझ लेना चाहिए कि बस, लड़का पत्रकार बनकर रहेगा।

यह भविष्यवाणी १०० में ६६ जगह सही उतरेगी। एक प्रतिशत गलती की संभावना सिर्फ तभी हो सकती है, जब कि ऐसा संस्कारी बालक १६ वर्ष से भी कम की उम्र में किसी लड़की को, बिना सूचित किये ही, प्रेम कर उठे और सूचित होने पर वह लड़की उसे दुत्कार दे, तो समझ लीजिए कि लड़का हाथ से गया, यानी अब पत्रकार नहीं बन सकता—इस कम्बख्त के कर्म में तो केवल कवि होना ही लिखा है!

यद्यपि न मुझे शुद्ध हिन्दी आती है, न अंग्रेजी। न बी० ए० हूँ, न विद्यालंकार। एक-एक करके १७ पत्रों को छोड़ने के अतिरिक्त कोई सनद और डिप्लोमा भी मेरे पास नहीं है, सठियाने में भी अभी पूरी एक रजत जयन्ती बाकी है, मालिकों की या मजदूरों की किसी यूनियन से भी मेरा कोई संबंध नहीं है, फिर भी मैं पत्रकार हूँ! क्या आप मेरे पत्रकार बनने की कहानी सुनिएगा?

मैं पत्रकार कैसे बना?

मैं पत्रकार कैसे बना, इसकी कहानी भी कम रोचक नहीं है। वह इस कदर प्रगतिशील है कि मास्को वाले भी उस पर गर्व कर सकते हैं। बेकार लोग उसमें से सार-ग्रहण कर सकें, इसलिए उसे यहाँ दे रहा हूँ:—

बात यह हुई कि बचपन में मैं बेहद शैतान था। घर से स्कूल की कह जाता और दिन-भर गलियों में गिल्ली-डंडा उड़ाकर ठीक चार बजे घर वापस लौट आता। इम्तिहान के दिनों में बीमार बन जाता और छुट्टियों के दिनों में छुट्टा फिरा करता। बीस वर्ष की अवस्था में खरामा-खरामा आराम से १०वें दर्जे तक तो पहुँच गया, लेकिन १०वें की देहली उलांघने का परमिट लाख हनुमान चालीसा पढ़ने और शिवजी पर रोज शाम को दीपक जलाने के बाद भी नहीं मिला। जब एक, दो, तीन और लगातार चार साल तक की कड़ी नाकेबंदी के बाद भी मैट्रिक का मोर्चा सफल होता दिखाई नहीं दिया और ब्रह्मचर्य

पालन करने की अवधि भी शनैः शनैः समाप्त होने लगी तो मैं सफलता-पूर्वक मोर्चे से वापस हट आया !

अब सवाल हुआ कि क्या किया जाय ? कुछ दिन का समय तो घरवालों ने सेहत सुधारने के लिए सुविधापूर्वक प्रदान कर दिया, लेकिन जैसे ही गधा-पच्चीसी समाप्त हुई (पच्चीस वर्ष की उम्र पूरी हुई) उन्होंने साफ कह दिया कि बेटे, अब तुम जानो और तुम्हारा काम। जाओ, कमाओ-खाओ, मौज करो !

तब मैंने क्लर्की से लेकर ट्यूशनों तक की तलाश में गली-बाजारों के चक्कर लगाना प्रारम्भ कर दिया। जब उसपर कोई राजी नहीं हुआ तो बजाज से लेकर हलवाई तक की दूकान पर नौकरी के लिए लोगों से अभ्यर्थना की। मगर कोई मुझे अधिक बुद्धिमान बताकर इन्कार कर देता और कोई कमअक्ल कहकर दरवाजा दिखा देता। कोई कहता कि काम करने की तुम्हारी उम्र निकल गई और कोई कहता कि जाओ फिर से पाठशाला मे भरती हो जाओ !

शुरू-शुरू मे कुछ दिनों तक तो माताजी धोबी की धुलाई, ठोड़ी की छिलाई और हाथ-खर्च के लिए चुपके-चुपके कुछ पैसे देती रहीं, मगर जब उनके धैर्य ने भी जवाब दे दिया और बाजार से परिवार के नाम पर उधार मिलना भी बन्द होगया तो हमने सोचा कि इस झूंठी कुल की लाज-शर्म मे क्या लोगे ? और एक दिन हिम्मत करके पान-बीड़ी का खौमचा लगाना प्रारम्भ कर ही तो दिया !

मेरे इस परम प्रगतिशील कार्य से जबकि मेरे कुल वालों का मस्तक गर्व से ऊँचा उठना चाहिए था, शर्म से नीचे झुक गया ! उनकी नाक बढ़ती नहीं तो कम-से-कम स्थिर तो रहनी ही चाहिए थी, मगर उनके कहने से मालूम हुआ कि वह कुछ छोटी होने लगी है। जो भी हो, मुझे यह पेशा छोड़ने के लिए मजबूर किया जाने लगा, पर मैं टस-से-मस नहीं हुआ।

और क्यों होता ? ६-७ घंटे की फेरी से न केवल मेरा हाथ-खर्च ही सीधा होने लगा, वरन् मेरे वायल के कुर्ते की जेब में हर रोज सिनेमा के लिए पैसे भी आ जुटने लगे !

पान-बीड़ी के खौंमचे से सबसे बड़ा लाभ तो यह हुआ कि मुझे

में भी अब आत्म-विश्वास जगने लगा। मैं, जो अब तक बड़ों से बातें करते सकुचाता था, अब उनसे बहस करने लगा। मैं जो मूर्खों के समुदाय का ही एक विशिष्ट सदस्य अब तक समझा जाता था, अब उन्हें उपदेश देने लगा। पान-बीड़ी के प्रताप से मेरी पहुँच तांगे वालों से लेकर कोठी वालों तक हो गई। स्कूल के चपरासी से लेकर दरोगा जी तक को मैं सलाम करने लगा। जैसे मेरी बीड़ियाँ जनता के हर वर्ग के मुंह लगी थीं, वैसे ही जनता के हर वर्ग की चर्चा मेरे मुंह लग उठी।

विचारशून्य इस मस्तिष्क मे अब भाँति-भाँति के विचार उठने लगे। मैं पनवाड़ी की दूकान से लेकर होटल चलाने तक के स्वप्न देखने लगा, पर तत्काल ही एक दिन एक शहरी नेता को बीड़ी-बंडल बेचते-बेचते मेरे मन मे ज्ञान का उदय हुआ। मन मे सोचा कि दुनिया में दौलत तो सब कमाते है, तुम्हे तो कोई जन-सेवा का मार्ग अपनाना चाहिए! मैंने चुंगी की मेम्बरी से लेकर असेम्बली की 'एमेलेगीरी' तक की बाबत गौर से विचार किया। यह भी सोचा कि कांग्रेस में जगह न हो तो सोशलिस्ट पार्टी मे ही घुस पड़ूं। साल दो साल मे अपनी-पराई सेवा के द्वार खुल ही जाएंगे। लेकिन मन कहीं स्थिर नहीं हो पारहा था।

कि तभी एक दिन, एक टूटी-सी बिल्डिंग के छोटे-से द्वार के बगल में एक नोटिस-बोर्ड दिखाई दिया। लिखा था—"पत्रकार चाहिए।" जैसे भगवान बुद्ध को अक्षयवट के नीचे एक दिन मुक्ति का रहस्य एकाएक ज्ञात हुआ था, जैसे गांधीजी के समक्ष एक रात एकाएक असहयोग का अस्त्र प्रकट होगया था और जैसे सैकड़ों वर्ष के गुलाम भारत को एक दिन एकाएक आजादी मिल गई थी, ठीक वैसे ही मेरी सफलता का ताला जो वर्षो से बन्द था, एकाएक आज उसकी ताली मुझे मिल गई!

आव देखा न ताव, अपना पान-बीड़ी का पल्ला रास्ता चलते एक भाई को टिका, मैं एक सांस मे बिल्डिंग की २७ सीढ़ियां खटाखट पार कर गया और चपरासी की हें-हें की परवाह न करता हुआ सीधा मैनेजर के सामने जा दन्नाया!

मैनेजर ने प्रश्न-सूचक सिर ऊपर उठाया।

मैंने कहा, "पत्रकार बनने की तमन्ना है।"

पूछा, "अब तक क्या करते रहे हो?"

कहा, "केवल ज्ञान-संचय।"

पूछा, "क्या मतलब?"

"यही कि जनता के प्रत्येक वर्ग से, उसकी समस्याओं से सीधी जानकारी है।"

"पढ़ाई-लिखाई कितनी हुई है?"

कहा, "पच्चीस साल तक सब-कुछ छोड़कर पढ़ता ही रहा है। हाँ, डिग्रियों का मोह कभी नहीं किया। हिन्दी-अंग्रेजी लिख-पढ़ लेता हूँ, उर्दू-फारसी बोल-समझ लेता हूँ, पंजाबियों का पड़ौस है, मदरासियों से दोस्ती है।"

प्रश्न हुआ, "वेतन कितना लोगे?"

तो कहा, "मैं इस लाइन मे वेतन के लिए नहीं आरहा, जो दे दोगे, ले लूंगा।"

हुक्म हुआ, "जाओ, आज से ही काम करो। तुम्हे 'सिटी रिपोर्टर' बनाया। दिन-भर घूमो और शाम को खबरे लाकर मुझे दिखाना।"

भला इस काम मे मैं कभी असफल हो सकता था? सास-बहू की लड़ाई से लेकर तांगा-मोटर भिड़न्त तक के समाचार रंग-रंग पर देने लगा और वे बड़े-बडे शीर्षकों से अखबार में बाहर-भीतर छपने लगे!

शुरू-शुरू मे सहकारी सम्पादकों के दल मुझ नौसिखिए अजनबी को देखकर काटने दौड़े, मगर मेरे स्वस्थ शरीर और मेरे गले में मैनेजर का पट्टा देखकर वे गुर्राकर ही रह गये! धीरे-धीरे पटरी बैठ गई।

बाद मैंने तांगा-मोटर-भिडन्त को छोड़कर युवतियों के भागने और भगाने के भण्डाफोड़ो मे दिलचस्पी ली। दस-पांच मामले ऐसे आये कि शहर में खलबली मच गई, अखबार की बिक्री चौगुनी होगई और नगर का प्रतिष्ठित समाज मुझसे भय खाने लगा!

तब मैंने एक नई रीति अपनाई। लिखता कि आज अमुक बाजार के एक प्रतिष्ठित सेठ के यहां की भयंकर खबर हमारे पास आई है। उसका पूरा विवरण कल के अंक मे पढ़िएगा। अखबार हाथ में आते ही सेठ की फूंक सरक जाती। लोगों में चर्चा फैलती, सौदा होता और १०० में से ५० मामले दब जाते। इसमें मैनेजर की भी पत्ती रहती।

धीरे-धीरे मै सिटी रिपोर्टर से विशेष सम्वाददाता हुआ और फिर विशेष प्रतिनिधि। एक पत्र से दूसरे में गया और दूसरे से तीसरे, चौथे और पांचवे मे। कांग्रेसी अखबार मे कांग्रेस के गुण गाता और महासभाई पत्र में पहुँचता तो कांग्रेस को डटकर कोसता। सेठों के अखबार में जाता तो हड़तालों की निन्दा करता और सोशलिस्टों के अखबारोंमे मजदूरों को हड़ताल के लिए उकसाता। यही नही एक ही अखबार मे एक ही कलम से मैं अग्रलेख मे सरकार का समर्थन करता और समाचार में उसकी कलई खोलता। इन्हीं गुणों के कारण पत्रकार मुझे महान मानने लगे, सरकारी अधिकारियों मे मेरा सम्मान होने लगा और सेठों की मोटरे मेरे दरवाज़े पर खड़ी रहने लगीं। दुनिया भूल गई कि मैं पान-बीड़ी-फरोश हूँ।

अभी कुछ दिन हुए पत्रकारों ने मेरी जयंती मनाई थी। उस अवसर पर जो मैंने महान् भाषण दिया था, उसके कुछ ऐतिहासिक स्थल आपके ज्ञान-वर्द्धन के लिए यहाँ लिख रहा हूँ:—

"भाइयो और बहनो !

आज की दुनिया मे 'प्रेस' का कितना महत्व है यह आप जानते ही हैं। दुनिया की व्यवस्था, उसकी शांति और समृद्धि 'प्रेस' पर ही निर्भर है। इस 'प्रेस' की नीव पत्रकारों पर, यानी हम पर खड़ी है। अगर हम आदर्शवान है तो दुनिया आदर्शो पर स्थिर रहेगी और यदि हम डिग गये तो दुनिया गिर पड़ेगी।

मुझे बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि आज के पत्रकारों मे वह आदर्शवादिता, वह सेवा भावना और वह तत्परता नही रही, जैसी कि तब थी जब कि हम लोगों ने इस लाइन में कार्य प्रारम्भ किया था।

आज हम लोग वेतनों के बढ़वाने में, सुविधाओं के प्राप्त करने में तो यत्नशील हैं, पर पत्रकारिता के आदर्श, त्याग और निष्काम कर्म की भावना के उपदेश को बिल्कुल भुला बैठे है।

आप नहीं जानते कि पत्रकार समाज की आँख होते है। वे विराट् प्रजा की वाणी होते है। सच्चे अर्थो मे पत्रकार ही आज ब्राह्मण है। आज प्रात काल उठते ही भगवद् मंत्रों का उच्चारण नहीं होता हमारे पत्रों का पारायण होता है। प्राचीन ऋषि-मुनियों के समान ही प्रत्येक विषय पर हम अपनी व्यवस्था देते है। प्राचीन पुरोहितों के समान ही हम राज्यों का संरक्षण करते है और प्राचीन कौटिल्यों के समान ही हम साम्राज्यों को उखाड़ फेकते है।

हे ऋषिपुत्रो, हे नवयुग के तपस्वियो, उठो और अपने धर्म को धारण करो!"

पर यह तो कहने की बात हुई। मैंने इधर अपनी कोठी बनवा ली है, कार के लिए आर्डर दे दिया है और निकट भविष्य मे अपना स्वयं का पत्र निकालकर मैं शाब्दिक अर्थों में भी अब पत्रकार बन जाने वाला हूँ। जय हिन्द!